श्री वीर पुस्तक-माला का द्वितीय पुष्प

धर्मवीर सुदर्शन

मुनि 'अमर'

"किं जीवन दोष विवर्जितं यत्"

प्रकाशक
श्री वीर पुस्तकालय
लोहामंडी, आगरा

ॐ

धर्मवीर सुदर्शन

रचयिता

श्री मनोहर संप्रदायी जैनाचार्य पूज्य श्री पृथ्वीचन्द्र जी
म० के सुशिष्य उपाध्याय कविरत्न मुनि
श्री अमरचन्द्र जी महाराज

द्रव्यदाता

श्रीमान सेठ ज्वालाप्रसाद जी जगदंबाप्रसाद जी
७१, बडतल्ला स्ट्रीट, कलकत्ता

प्रथम सस्करण
१०००

मूल्य
पांच श्राना

वीराब्द २४६५
विक्रमाब्द १९९५

मुद्रक—
जगदीशप्रसाद अग्रवाल, बी. कॉम.,
दी एज्यूकेशनल प्रेस,
"बाँके-विलास", सिटी स्टेशन रोड,
आगरा।

समर्पण

व्याख्यान वाचस्पति पं० श्री मदनमुनिजी !

सुहृद्वर !

यह आपकी प्रेरणा का फल आपके ही

करकमलों में सादर

समर्पित है।

मुनि, अमर

सप्रेम उपहार

आपका

आत्म-निवेदन !

संवत् १९९३, फाल्गुन मास, 'होली' उत्सव के दिन, मेवात-प्रदेश के सुप्रसिद्ध नगर रिवाड़ी के पास एक बहुत छोटे से गाँव गोकुलगढ़ में—हम सब मुनि ठहरे हुए थे। गाँव में होली का हुडदंग अपनी चरम सीमा पर था। गंदे गीत, गंदे गाली गलोज, गंदी चेष्टाएँ—जो कुछ था गंदा ही गंदा था। एक प्रकार से उत्सव के नाम पर सदाचार का हत्याकांड हो रहा था। सुहृद्वर श्री मदन मुनिजी ने (आप हमारे पंजाब प्रान्त के बड़े प्रभाव-शाली व्याख्याता हैं और पंजाबी पूज्य श्री अमरसिंहजी की संप्रदाय के प्रतिष्ठित मुनिराज हैं) मुझसे कहा—क्या देख रहे हो ? देखा, भारतीय सभ्यता किधर जा रही है ? फिर उन्होंने कहा—भारतीय गाँवों में सदाचार का महत्व समझाने बुझाने के लिए राधेश्याम रामायण के ढंग पर कविता में कोई चरित्र ग्रंथ लिखिए। बातों ही बातों में सुदर्शन चरित्र लिखना तै हुआ, और आपकी प्रेरणा से उसी समय लिखना भी शुरू कर दिया गया।

परन्तु आप जानते हैं, कोई भी चीज हो, वह समय पाकर ही पूर्ण हुआ करती है। देहाती गाँवों में धर्म दुन्दुभि बजाते हम सब मुनि दिल्ली आए, कुछ दिन ठहरे, और फिर सब इधर-उधर बिखर गए। मैं ठहरा पक्का आलसी ! श्रीमदन मुनिजी साथ में थे, तो प्रेरणा मिलती रहती थी, कुछ जोड़ तोड़ करता रहता था। ज्योंही वे पृथक हुए कि सुदर्शनजी भी मेरे से पृथक होगए, फिर कुछ भी नहीं लिखा गया। इस वर्ष १९९५ का

अपना चातुर्मास आगरा मे हुआ, और मदन मुनिजी का ठेठ पजाब मे—रावल पिडी मे, बहुत दूर दूर। गत चातुर्मास मे भी आपका आग्रह चलता था, परन्तु इस बार तो आपका बहुत ही आग्रह रहा। प्राय प्रत्येक पत्र मे इसके लिए तक़ाज़ा कराते रहे। अन्त मे मुझे आपकी आज्ञा को शिरोधार्य करना ही पडा। फलत. अन्य लखन कार्य छोड कर शीघ्र ही सुदर्शन को पूरा करने का विचार किया, और वह पूरा कर दिया गया। यह कहानी है, मेरे सुदर्शन चरित्र के बनने-बनाने-बनवाने की। अगर श्रीमदन मुनिजी प्रेरणा न करते तो, न तो प्रथम इसके बनाने का ही सकल्प आता और न यह पूर्ण ही हो पाता। अतएव प्रस्तुत पुस्तक के निर्माण का समस्त श्रेय एक मात्र आप को ही दिया जा सकता है। आप देखेंगे, मैने भी इसीलिए यह पुस्तक श्री मुनिजी के ही कर कमलो मे समर्पण की है। 'नहि कृतमुपकार साधवो विस्मरन्ति।'

धर्मवीर सुदर्शन का कथानक, जैन ससार मे एक बहुत प्रसिद्ध लोकप्रिय कथानक है। प्राय सभी प्राचीन कथाकार जैनाचार्यों ने श्री सुदर्शन के चरणो मे अपनी अपनी श्रद्धाजलिया अर्पण की हैं, अनेकानेक सुन्दर सुमधुर जीवन चरित्र लिखे हैं। मैंने भी उस परम पवित्र महापुरुष के चरणो मे यह भाव-भरी श्रद्धाजलि अर्पण की है। सुदर्शन सदाचार के समुज्वल प्रतीक है। उनके जीवन मे पद पद पर सदाचार की अखंड छाप है। संसार के मोहक से मोहक प्रलोभनो मे से भी अपने आपको कैसे बचाया जा सकता है, धर्मरक्षा के लिए क्या कुछ बलिदान करना होता है, यह अगर सीखना हो तो अकेले सेठ सुदर्शन के जीवन पर से सीखा जा सकता है। आशा है, प्रेमी पाठक जैसा कि अपना संकल्प है—उक्त पुस्तक पर से अधिक

से अधिक सदाचार का आदर्श ग्रहण करने की कृपा करेंगे, तथाच अपने जीवन को शुद्ध स्वच्छ समुज्वल बनाएँगे।

प्राचीन पद्धति के कथानकों को नवीन पद्धति में लिखने का, वह भी कविता मे, यह मेरा पहला ही प्रयास है। अभी तक मै फुटकर रचनाएँ ही लिखता रहा हूँ, जिन पर कृपालु मित्रो की ओर से प्रशंसा भी खूब मिली है। परन्तु फुटकर रचनाएँ लिखना एक बात है, और किसी का समूचा जीवन चरित्र लिख देना, यह दूसरी। अस्तु सुदर्शन के लिखने मे मुझे एक प्रकार से कुछ भी सफलता नहीं मिली है। मै आशंका करता हूँ, मेरे बहुत से निकट स्नेही तो ऐसी थर्ड क्लास चीज लिखने पर रुष्ट भी होंगे, और बाज बाज तो उलहना भी भेजेंगे। परन्तु मैं करू क्या? आदमी वही तो कर सकता है, जितनी उसकी क्षमता होती है। क्षमता का ख़याल छोड कर काव्य कला के फेर मे कुछ रग भरने का प्रयत्न भी करता, सो हमारे मदन मुनिजी नहीं माने। आपका कहना था, जिस ध्येय से मै यह पुस्तक लिखा रहा हूँ, उसके लिए काव्य कला की ऊँची उडाने भरने की कोई ज़रूरत नही है। अस्तु कविता वविता कुछ नही यह तो सीधी सादी भाषा मे धर्मवीर सुदर्शन के महान् जीवन का प्रतिविम्ब मात्र लिया है, किसी सहृदय को पसद आजाय तो सौभाग्य!

एक बात और है, जिसे मुझे अवश्य स्पष्ट करना है। प्राचीन कथा ग्रन्थो मे पौषधाङ्गीकरण से लेकर शूली सिहासन तक सुदर्शन को सर्वथा मौन ही रक्खा गया है। परन्तु मुझे यह कुछ खटकता सा रहा। मेरी समझ मे ऐसा करने से सुदर्शन की तर्फ का कथा प्रसंग कुछ फीका सा, कुछ अधूरा सा रह जाता था। अत मैंने सुदर्शन जी को बुलवाया है, और ख़ूब

बुलवाया है। उनके अन्तर का चित्र समय-समय पर उनके अपने मुख से बाह्य निकलवाते रहने का मैंने पूरा पूरा ध्यान रक्खा है। यह मेरी निरी भावुकता, मैं जानता हूँ, प्राचीनता प्रेमी सज्जनों को कतई पसंद नही आएगी। ठीक भी है, प्राचीन आचार्यों के समक्ष अपनी अलग परम्परा कायम करना, हम छोकरों की एकमात्र धृष्टता ही तो है। अस्तु, प्रकाशित हो जाने के पश्चात् समालोचना के रंगमंच पर इस सम्बन्ध में कुछ कहना सुनना पड़े, इसके लिए मैं पहले ही क्षमा माँग लेता हूँ।

यह तो एक भयंकर–महाभयंकर–भयंकरातिभयंकर अशुद्धि काड है। इसके अतिरिक्त भी बहुत सी छोटी-मोटी अशुद्धियाँ रही हुई हैं, उन सबके लिए भी विनम्र क्षमायाचना है। भूलना और फिर अकड़ना, यह तो नहीं हो सकता। भुलक्कड़ के लिए तो मात्र क्षमा का ही अभय द्वार खुला हुआ है।

लोहामंडी, आगरा
ता० २-१२-१९३८

मुनि, अमरचन्द्र 'अमर'

श्रीमान् दा० वी० जैन समाज भूषण
स्व० सेठ ज्वालाप्रसादजी के सुपुत्र

छोटे पुत्र
चि० महावीरप्रसाद

बडे पुत्र
चि० माणकचंद्र

७१, बल्ड़ता स्ट्रीट, कलकत्ता

आभार-प्रदर्शन

श्रीमान् दानवीर जैन समाज भूषण स्व० सेठ ज्वालाप्रसाद जी को कौन नही जानता ? जैन-समाज पर आपका वह विशाल ऋण है, जिससे कभी भी उऋण नही हुआ जा सकता। आपने अनेकों धर्मस्थान बनाए है, पुस्तकालय उद्घाटन किए है, दीक्षा महोत्सव कराए है, और जिनेन्द्र गुरुकुल पचकूला जैसी विशाल शिक्षण संस्थाओ का उल्लेखनीय पालन पोषण किया है। महेन्द्रगढ मे पूज्य श्री मोतीराम जी म० को जो आचार्य पद प्रदान करने का सुप्रसिद्ध महोत्सव हुआ था, उसका भी आदि से लेकर अन्त तक समस्त भार आपने ही अपने ऊपर उठाया था। साहित्य सेवा सम्बन्धी आपकी अभिरुचि भी युग-युग उल्लेखनीय रहेगी। बत्तीस आगमो की पेटी, अपने द्रव्य से छपा कर गॉव गॉव मे अमूल्य उपहारस्वरूप देना, आपका सबसे बडा महत्वपूर्ण कार्य है। आपने अपने ४२ वर्ष के अल्प जीवन मे ही ४,००,०००) चार लाख से ऊपर द्रव्य धर्म-कार्यों मे व्यय कर जैन-समाज का गौरव बढ़ाया है।

हर्ष है कि आपकी धर्मपत्नी सेठानी साहिबा भी आप जैसे ही विचार रखती हैं। दान-कार्य मे सेठानी जी ठीक-ठीक पति-देव के पद चिन्हो पर चल रही हैं। सेठ साहब ने जो स्थायी सस्थाएँ चालू की थी, उन्हें आप उसी रूप मे चला रही हैं और यथावसर अन्य भी दानपुण्य करती रहती है। महाराज श्री के दर्शनो को इस चातुर्मास मे आप अपने सुपुत्र चि० माणक-चन्द्र चि० महावीरप्रसाद तथा सुपुत्री सौभाग्यवती सूर्यकुमारी

के साथ आगरा पधारी थीं। तपोत्सव का प्रसग था, इस उपलक्ष में स्थानीय सस्थाओ को आपने ३००) की प्रशंसनीय सहायता पहुँचाई। हमारे वीर पुस्तकालय को भी १००) की आर्थिक सहायता के अतिरिक्त प्रस्तुत सुदर्शन चरित्र भी, प्रकाशन का व्यय अपनी ओर से उठाकर, भेट किया। इस उदारता एव सहायता के लिए सेठानी जी के हम अतीव कृतज्ञ हैं। आशा है भविष्य मे भी आप इसी प्रकार यथावसर जैन-समाज की सेवा करती रहेंगी, एव अपने स्वर्गीय पतिदेव के शुरू किये हुए सत्कार्य के प्रवाह को जारी रक्खेगी। तथैव वीरप्रभु से मगल कामना है कि आपके सुपुत्र चि० माणकचन्द्र, चि० महावीरप्रसाद भी चिरायु हो और अपनी योग्य अवस्था मे योग्य पिता के योग्य पुत्र प्रमाणितहो। समाज को आपसे पिता के समान ही बहुत कुछ आशाएं है।

श्री वीर पुस्तकालय
लोहामडी, आगरा।

विनीत
रतनलाल जैन, मीतल

विषय-सूची

धर्मवीर सुदर्शन

मंगल

[तर्ज—काली कमली वाले तुमको लाखों प्रणाम]

महावीर, जग स्वामी !
तुमको लाखों प्रणाम !
अन्तर मे वर करुणा जागी,
देखा भारत अति दुख-भागी,
वैभव की दुनिया त्यागी,
तुमको लाखो प्रणाम !
दैत्यों का दल बल चल आया,
उत्कट संकट घन बरसाया,
अणुमात्र न मन हिर्गाया,
तुमको लाखों प्रणाम !
सर्प चंड कौशिक फुंकारा,
उग्र दंश चरणों मे मारा,
समझाया प्रेम पियारा,
तुमको लाखों प्रणाम !

बारह वत्सर वन-वन डोले,
सभी विचार आचार मे तोले,
हाँ जनता मे फिर खोले,
तुमको लाखो प्रणाम !
दुराचार पाखड हटाया,
सदाचार सर्वत्र पुजाया,
धर्मों का द्वन्द्व मिटाया,
तुमको लाखो प्रणाम !
अटल दुर्ग पशु-बलि का तोडा,
जाति-वाद का कठ मरोडा,
पतितो से नाता जोडा,
तुमको लाखो प्रणाम !
देव! तुम्हारी महिमा भारी,
'अमर' विश्वकी दशा सुधारी,
त्रिभुवन——मगल——कारी,
तुमको लाखो प्रणाम !

१

कथा-प्रारंभ

दोहा

जगती ज्योति अखंड नित सदाचार की यत्र,
यश, लक्ष्मी, सौभाग्य, सुख रहते निश्चल तत्र!

मानव-भव का सार यही है सदाचार का अपनाना ।
पूर्णरूप से शुद्ध श्रेष्ठ आदर्श जगत में बन जाना ॥
वह मनुष्य क्या सदाचार का पथ न जिसने अपनाया ।
नर-चोले में राक्षस-सा अधमाधम जीवन दिखलाया ॥
सदाचार है पतित-पावनी गंगा की निर्मल धारा ।
पापाचार-दैत्य-दल-दलनी चन्द्र-हास की है धारा ॥

पंडित ज्ञानी बन जाने का यही सार बतलाया है।
'तोता रटन' अन्यथा निष्फल शास्त्र-पठन कहलाया है ॥
अखिल धर्म के नेताओ ने महिमा इसकी है गाई।
और इसी के बल पर सबने सर्वोत्तम पदवी पाई ॥
आओ, मित्रो ! चले जहाँ पर सदाचार की झलक मिले।
सदाचार-वेदी पर बलि होने का उच्चादर्श मिले ॥
सज्जनता की दुर्जनता पर विजय यहाँ बतलानी है।
नर-देही यह देव-दैत्य-द्वन्दो की एक कहानी है ॥

दोहा

अंग-देश म अति सुखद, चंपापुर अभिराम,
सभी भाँति समृद्धि से, शोभा अधिक ललाम।

भारत मे चंपा का भी क्या ही इतिहास पुराना है।
लाख-लाख वर्षो का इसके पीछे ताना-बाना है ॥
मानवता के नाना-रूपक चंपा मे उद्‌भूत हुए।
कामदेव से रत्न अमोलक यही विश्व-विख्यात हुए ॥
उसी रत्न नर-माला मे इक रत्न और जुड जाता है।
वीर सुदर्शन सेठ अलौकिक अपनी चमक दिखाता है ॥
स्नेह मूर्ति था द्वेष, क्लेश का लेशमात्र था नाम नही।
स्वप्न तलक मे भी झगड़े-टंटे का था कुछ काम नही ॥
दीनो की सेवा करने मे निश दिन तत्पर रहता था।
नर-सेवा मे नारायण-सेवा का तत्व समझता था ॥
भूला भटका दुखी दीन जब कभी द्वार पर आता था।
आश्वासन सत्कार पूर्ण सस्नेह यथोचित पाता था ॥

यौवन की आँधी मे भी वह सदाचार का पक्का था।
निज पत्नी के सिवा शुरू से ही नाड़े का सच्चा था ॥
बाल्य-काल मे श्रावक-व्रत के नियम गुरू से धारे थे।
धारे क्या, अनुभव के बल पर निज अन्तर मे तारे थे ॥
न्याय-मार्ग से द्रव्य कमा कर न्याय-मार्ग में देता था।
सकुशल जीवन-नैय्या अपनी अगम-सिन्धु में खेता था ॥
भाग्य-योग से गृह-पत्नी भी थी मनोरमा शीलवती।
प्राण-नाथ की पूजा करने वाली पति के मन-गमती ॥
दासी दास कुटुम्ब सभी नित रहते थे आज्ञाकारी।
बोला करती थी अति ही मृदु वाणी सब जन-प्रियकारी ॥
देश, धर्म, जाती सेवा मे पति का हाथ बँटाती थी।
क्लेश, द्वेष, मात्सर्य, रूढि के निकट नही क्षण जाती थी ॥
गृह-कार्यों मे चतुर सुविदुषी देश काल का रखती ज्ञान।
पर पुरुषों को अन्तर मति में पिता बन्धु सम देती मान ॥
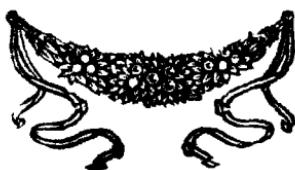
२
स्वदेश चिन्ता

दोहा

दम्पति प्रेमानन्द से, करते काल व्यतीत,
पूरी लय पर चल रहा, गृह-जीवन-संगीत।
राज पुरोहित श्री कपिल, बाल्यकाल के मित्र,
आए घर पर एक दिन, सरल स्नेह के चित्र।

देख सुदर्शन श्रेष्ठिवर्य ने झट उठ आदर मान दिया।
अपने हाथो लगा प्रेम से वर ताम्बूल प्रदान किया॥
अंग-अग पुलकित था, उमड़ा हर्ष न हृदय समाता था।
मित्र मेघ के आने पर मन मोर मुग्ध हो नाचा था॥
भूमडल मे 'मित्र' शब्द भी कैसा जादू रखता है।
स्नेह-सूत्र मे दो हृदयो को अविकल बाँधे रखता है॥
सच्चा मित्र वही ग्रन्थो मे जगत्-श्रेष्ठ कहलाया है।
मैत्री के प्रण को जिसने 'अथ' से 'इति' तलक निभाया है॥
दुग्ध और जल सी अभिन्नता जरा दुई का नाम नही।
प्रेम-पथ मे स्वार्थ हलाहल का तो कुछ भी काम नही॥
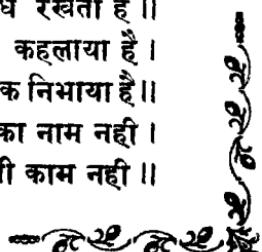
पर्वत सम अपने दुख को जो सर्षप जैसा गिनता है।
किन्तु, मित्र-दुख-सर्षप भर को गिरि से समता करता है॥
जहाँ पसीना पड़े मित्र का, अपना रक्त बहा डाले।
झेले अनहद कष्ट स्वयं, पर, सुखिया मित्र बना डाले॥
दब्बू या खुदगर्ज़ी बन कर अपना धर्म न खोने दे।
और नही कर्तव्य भ्रष्ट अपने मित्रो को होने दे॥
हंत ! स्वर्ण युग मित्रो का लद गया घोर अंधेर हुआ।
दोस्त नाम से दोषो का अब अटल राज्य चहुँ फेर हुआ।

अब क्या है ?

[तर्ज—अगर अब भी न समझोगे तो मिट जाओगे दुनिया से]

ज़माने हाल ने कैसा भयंकर फेर खाया है,
जहाँ मे मित्रता के नाम पर अंधेर छाया है।
जहाँ चाँदी भवानी की छनाछन हो तिजोरी मे,
वहाँ झट मित्र दल ने कूद दृढ आसन जमाया है।
कुपथ की ओर ले जाते कराते सैर चकलो की,
सिवा रांडो व भाडो के न किस्सा अन्य भाया है।
पड़ी जब आफते भारी फँसा हतभाग्य गर्दिश मे,
बनी के यार सब भागे न ढूँढे खोज पाया है।
सुबह बाजार मे घूमे परस्पर डाल गल बाहे,
दुपहरी मे जो बिगडी शाम को वारट आया है।
जरा भी गुप्त कोई बात गर निज मित्र की पाएँ,
करें बदनाम खुल्ला ढोल गलियो मे बजाया है।
भलाई ऐसे मित्रो से 'अमर' क्या खाक होवेगी,
वचन-मन मे कि जिनके रात्रि दिन सा भेद पाया है।

दोहा

क्षेम कुशल इत्यादि की, बातें हुई अनेक,
तदनन्तर दोनो चले, भ्रमण हेतु सविवेक।
मद-सुगन्ध-समीर युत, घूमे पुष्पाराम,
लौटने समय कपिल का, आया गृह अभिराम।
कहा कपिल ने तब समुद, हुई भ्रमण में देर,
भोजन कर मेरे यहाँ, निजगृह जाना फेर।
सेठ सुदर्शन ने करी, मित्राज्ञा स्वीकार,
आनाकानी हो कहाँ, जहाँ कि प्रेमाचार।

भोजन से होकर निवृत्त निज राष्ट्र-चिन्तना करते है।
शान्त कान्त एकान्त भवन मे गुप्त-मत्रणा करते है॥
कहा सेठ ने-'कपिल! तुम्हे है कुछ अपने पुर का भी ध्यान।
अत्याचार-ग्रस्त पुर-वासी निर्बल जनता का कुछ भान॥
नैतिक वातावरण नगर का दूषित होता जाता है।
भ्रष्टाचारी युवक वर्ग पतनोन्मुख होता जाता है॥
द्यूत, मद्य और वेश्याओ के आलय सब आबाद हुए?
हंत! खेद है, धर्माचारी गृहस्थ सब बर्बाद हुए॥
दीन प्रजा के नौनिहाल शिक्षा दीक्षा कब पाते है?
मूढ अशिक्षित रहने से फस दुराचार मे जाते हैं॥
प्रजा पतन का मूल हेतु राजा का व्यसनी होना है।
राज-धर्म से च्युत होकर विषयासव पीकर सोना है॥
न्याय-भवन मे न्याय कहाँ, अब दौर मद्य के चलते हैं।
जुवा खेलने मे निश दिन सोने के पासे ढलते हैं॥
न्यायानल में एक भाव से गीले सूखे जलते हैं।
रिश्वत खा-खाकर अधिकारी न्याय-नाम पर पलते हैं॥

प्रजा-कष्ट-कर नित्य नए ज़ालिम फर्मान निकलते हैं।
टैक्स-भार से दीन हीन श्रमजीवी रो रो घुलते हैं॥
बैठ वशिष्ठासन पर कब तुम अपना फर्ज़ बजाते हो।
राज्य-शान्ति का व्यर्थ ढोंग माला-जप में बतलाते हो॥
'त्राहि-त्राहि' कर प्रजा दुःख से जब विद्रोह मचाएगी।
शान्ति पाठ की शान्ति तुम्हारी तब क्या ढाल अड़ाएगी॥
बुद्धिभ्रष्ट नृप को समझाने का तो है अधिकार तुम्हें।
जी हुज़ूर होने पर मिलता प्रेत्य नर्क का द्वार तुम्हें॥
तुम्हे भले ही लक्ष्य न हो, पर, मैं तो अपनी कहता हूँ।
रात्रि दिवस अन्दर ही अन्दर चिन्तानल मे दहता हूँ॥
जभी राज्य के पतन-चित्र को बुद्धि-क्षेत्र मे लाता हूँ।
दुःख-सिन्धु मे बह जाता हूँ रोता रात बिताता हूँ॥"
बह चली सेठजी के नेत्रो से अविरल आँसू की धारा।
बोल न सके और कुछ आगे, रुँधी शेष वाणी-धारा॥
मर्माहत हो मित्र पुरोहितजी भी गद्गद स्वर बोले।
राज-भवन के भेद गुप्त तम साफ-साफ सब कुछ खोले॥
"मित्र! तुम्हारा कथन सत्य है,किन्तु न मम वश चलता है।
वहाँ मात्र अभया राणी का शासन निर्भय चलता है॥
अधिकारी अपनी इच्छा से रखती और हटाती है।
आज तख्त पर बैठाती है, कल फाँसी लटकाती है॥
अपने राजा दधिवाहन तो अन्तःपुर की तितली हैं।
रूपगर्विता राणीजी के हाथो की कठ-पुतली हैं॥
अर्धस्पष्ट मधुर बातों से बहुत बार है समझाया!
कटु औषधि के बिना पूर्ण फल किन्तु कहाँ किसने पाया?

अधिकारी होने के नाते नहीं अधिक कुछ कह सकता।
'धक्के खाऊं, फाँसी पाऊं' यह अपमान न सह सकता॥
आप दूसरे राजा है, राजा को जाकर समझावें।
सभव है, यदि आप कहेंगे तो कुछ पथ पर आजावें॥
जैसा भी कुछ हूँ कि तुम्हारे स्वर में मैं भी बोलूंगा।
कडवी मीठी कह सुन कर राजा के श्रुतिपट खोलूंगा॥"

दोहा

युगल मित्र मिल कर चले, राजा के दरबार,
राजा ने भी प्रेम से, किया खूब सत्कार।
हाथ जोड़ कर सेठ ने, रक्खा निज प्रस्ताव
खोल खोल कर स्पष्टतः, समझाया सब भाव।

"देव! आजकल पता नहीं तुम किस विचार मे बहते हो?
राज्य कार्य सब छोड अलग सी किस दुनियाँ मे रहते हो?
अन्यायी अधिकारी गण ने प्रजा त्रस्त कर रक्खी है।
तात! तुम्हारी सन्तति की मिट्टी पलीद कर रक्खी है॥
दीन प्रजा जन कैसे कैसे जोर जुल्म नित सहते है।
चम्पापुर मे हास्य छोड़ आँसू के निर्झर बहते है॥
वैभव की सुख-निद्रा तज कुछ प्रजा श्रेय भी करिएगा।
क्षणभगुर दुनियाँ मे स्वामी! अमर सुयश कुछ गहिएगा॥
धनाभाव मे यदि शिक्षादिक-प्रजाहित न बन सकता है?
तो अपना भडार दास श्रीचरणो मे धर सकता है॥
कौडी-कौडी पैसा-पैसा प्रजाहितार्थ लुटा दूंगा
स्वामी जहाँ डटा देगे उस स्थल से पद न हटाऊंगा॥"

राजा कौन है ?

[तर्ज—बिगड़ी हुई तकदीर बनाई नही जाती]

राजा वही जो राष्ट्र की सेवा बजाता है,
'स्वामी अहं' का भाव सुपने में न लाता है।
अणु मात्र भी पाता व्यथा अपनी प्रजा मे गर,
पड़ती जरा न कल, सदा आँसू बहाता है।
मस्तक मे राष्ट्रोत्थान की ही कल्पना घूमे,
अपने निजी सुख भोग पर लातें जमाता है।
परमात्मा या देवता समझे प्रजा को ही,
रक्षार्थ उसकी प्राण तक भी बलि चढाता है।
सम्बन्ध राजा और प्रजा का है पिता सुत-सा,
जग मे 'अमर' है वह जो आजीवन निभाता है

× × +

उक्त कथन का पडित ने भी किया समर्थन समझा कर।
दर्शाये सब भाव हृदय के बडी नम्रता दिखला कर॥
राजा ने भी राष्ट्र-हितो की रक्षा का सम्मान किया।
दब्बू या सकोचीपन से नही क्रोध अभिमान किया॥
ऊपर मृदुता, किन्तु चित्त के अन्दर कटुता भारी है।
सेठ सुदर्शन के प्रति अति ही घृणा भावना धारी है॥
सोचा—"बणिक, बुद्ध बन मुझको शिक्षा देने आया है।
स्यार सिह के कान उमैठे, कैसा कलियुग छाया है॥
मैं अवश्य इस गुस्ताखी का इक दिन मजा चखाऊँगा।
मौक़ा मिलने पर पाजी को कारागृह दिखलाऊँगा॥"

कर प्रणाम राजा को दोनो मित्र सहर्षित चले तुरंत।
राजनीति मे उलट फेर की बातें नाना भाँति करंत ॥
राजा भी महलो मे पहुँचा क्रूर, कुटिल अति ही क्रोधान्ध।
दैव दोष से बन जाते हैं, चतुर विचक्षण भी प्रज्ञान्ध ॥

३

कपिला का प्रपंच

दोहा

आवो, अब घर कपिल के, चलें वहाँ क्या हाल.
बैठी कपिला ब्राह्मणी, शोकाकुल बेहाल।
भोजन-गृह में सेठ का. देखा रूप रसाल
कामानल की हृदय में, ज्वाला उठी कराल।

देखा जब से सेठ सुदर्शन कपिला सुध-बुध भूल गई।
भोग-वासना के जहरीले झूले पर हा झूल गई॥
लोक लाज कुल-मर्यादा का कुछ भी नहीं खयाल रहा।
रात दिवस अन्दर ही अन्दर शल्य विरह का साल रहा॥
हर वक्त सेठ से मिलने की ही चिन्ता मे वह रहती है।
प्राईवेट दासी से अपना भेद साफ़ सब कहती है॥
"देखा, चंपा। तूने जग मे सुन्दर ऐसे होते हैं।
दर्शन भर से हृदयो मे जो बीज प्रेम का बोते हैं॥
रूप-माधुरीयुत पुरुषो मे वे ही एक नगीने हैं।
पंडितजी तो उनके आगे लगते साफ़ कमीने हैं॥

जीवन धन्य तभी यह होगा, जब तू उसे मिला देगी।
देख, अन्यथा मुझे मौत के घाट उतरते देखेगी॥"
ऊँच नीच सब बाते दासी ने बहुतेरी समझाई।
काम विह्वला कपिला के पर एक न मस्तक मे आई॥
अस्तु, एक दिन कपिल पुरोहित ग्रामान्तर के कार्य गए।
अनायास ही कपिला के भी मनचीते सब कार्य भए॥
दासी दौडी गई सेठ-घर नयनो अश्रु बहाती है।
बोली खास सुदर्शन से यो अन्तर कपट छुपाती है॥
"सेठ! तुम्हारे मित्र कपिल हा बहुत सख्त बीमार पडे।
जीवन की अन्तिम घडियॉ है शैय्या पर लाचार पड़े॥
बडी वेदना है, मछली के तुल्य तडफते रहते हैं।
जभी होश मे आते है तब 'मित्र सुदर्शन' कहते हैं॥'
मित्र-वेदना सुनते सुनते ऑख सेठ की भर आई।
सोचा-"प्रभो! अचानक यह क्या संकट की घटना आई॥
प्रजाकार्य प्रारभ अभी तक नही सफल समतोल हुआ।
मध्य-धार मे सहयोगी का जीवन डॉवा-डोल हुआ॥
धोखा देकर मुझे अचानक मित्र! छोड क्या जावेगा।
तुझ-सा स्नेही अन्य कहाँ से मेरा मानस पावेगा॥"

दोहा

भाग दौड़ कर सेठ जी, पहुँचे विना विलब,
उन्हें पता क्या था, वहाँ रोपा है विषखब।
मित्र! मित्र!! कहते घुसे, ज्योंही शयनागार,
त्योंही दासी ने जड़ा, ताला झट से द्वार।

कामयंत्रणा विकल कामिनी सुख शय्या पर पौढ़ी थी।
पूर्णतया सब ओर दबाकर लंबी चादर ओढ़ी थी॥
दबे साँस से पुरुष-स्वर में गहरी आहे भरती थी।
ज्वर रोगी सी दशा बनाए सिसक सिसक कर रोती थी॥

'कहो, मित्र! क्या हाल,' सेठ यो पास बैठ बतलाया है।
नाड़ी देखने हेतु हाथ चादर मे शीघ्र बढाया है॥
कंकण-भूषित कर छूते ही भेद समझ मे आया है।
मित्र वित्र कुछ नही, मित्र-पत्नी की सारी माया है॥

पीछे से मुड़कर देखा तो बंद द्वार पट पाया है।
कपिला ने भी इतने मे प्रच्छादन परे हटाया है॥
लाज-शर्म सब छोड़ सेठ का हाथ जोर से पकड़ लिया।
हाव-भाव के साथ मनोगत संकल्पों को व्यक्त किया॥

"प्राणनाथ! मम चित्त आपने क्यो पागल कर रक्खा है?
दर्शन देकर काम ज्वर से ग्रस्त विकल कर रक्खा है॥
समझाया दिल को बहुतेरा ज़रा नहीं कल पडती है।
ज्यो ज्यो दाबूँ विरह-वेदना त्यों त्यों अधिक उभड़ती है॥

सेवा मे दासी का सब कुछ तन मन अर्पण है, लीजे।
नि संकोच-भाव से खुलकर पूर्ण स्व-मन-इच्छा कीजे॥"
देख सेठ ने विकट परिस्थिति किया हृदय मे आलोचन।
'काम-विह्वला-नारी को किस भांति,करूँ अब उद्-बोधन॥

चाहे कैसा ही समझाऊँ, नहीं समझती दिखती है।
ज्यादह अगर रहूँगा तो शका ही बढती दिखती है॥'
सोच-साच कर बोले-"भद्रे! मैं क्या अपनी बतलाऊँ?
लज्जा अड़ी खड़ी है सम्मुख गुप्त भेद क्या समझाऊँ॥

परमेश्वर ने मेरे प्रति तो बड़ा विकट अन्याय किया।
सुन्दरता दी, किन्तु खेद है—नही मुझे पुंसत्व दिया॥
मैंने मात्र देखने भर को ऊपर नर तन धारा है।
अन्दर से नामर्द जन्म का दैव बड़ा हत्यारा है॥
लज्जा कारण अब तक मैंने निज क्लीवत्व छिपाया है।
भद्रे! तुम न किसी से कहना आज भेद खुल पाया है॥"
इतना सुनते ही कपिला तो बदहवास हो शरमाई।
भोग-मूढता पर अपनी अन्दर ही अन्दर पछताई॥
"नही बना कुछ कार्य, व्यर्थ ही परदाफाश हुआ मेरा।
हाय! वासना तूने मुझको अन्धकूप मे ला गेरा॥
पीतल कोरा निकला जिसको मैंने कंचन समझा था।
गंध-हीन किंशुक को पाटल पुष्प विमोहन समझा था॥'
चंपा! खडी देखती क्या है? खोल झपट कर दरवाजा।
बाहर काढ पाप को, निकला कोरा हिजडो का राजा॥"
"भद्रे! क्यो घबराती है? मै तो खुद ही जाता हूँ।
व्यर्थ कष्ट यह हुआ आपको इसकी माफी चाहता हूँ॥"
कपिला दिल मे घबराई फिर हाथ जोडकर यो बोली।
'कृपा करे, न किसी से कहना बात जोकि मैंने खोली॥"
कहा श्रेष्ठी ने "मेरी भी यह गुप्त बात नही कहना।
"दोनो की बातो का अच्छा दोनो तक सीमित रहना॥"
सेठ और कपिला दोनो ने वचन बद्धता की स्वीकार।
दासी ने भी खोला झट पट दरवाजा आज्ञा-अनुसार॥
द्वार खुला तो सेठ सुदर्शन शीघ्र निकल बाहर आए।
सहा घोर अपमान, किन्तु निज धर्म बचाकर हर्षाए॥

दासी के सँग मे जाने से आज अमिट लग जाता दाग।
'महिलामंत्रण से पर घर पर एकाकी जाने का त्याग।।'
शान्तिपूर्ण गृह स्वर्ग लोक मे ठने न कटुता का व्यवहार।
कहा सेठ ने नहीं मित्र से कपिला का कुछ भी कुविचार।।
सागर सम गंभीर सज्जनो का होता है अन्तस्तल।
पी जाते हैं विषवार्ता भी चित्त नहीं करते चंचल।।
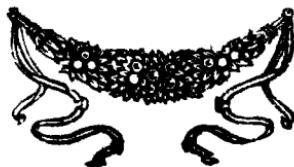
४
संकट का बीजारोपण

दोहा

प्रकृति क्षेत्र में अवतरित हुआ सुरम्य बसंत ;
किन्तु सुदर्शन के लिए लाया कठिन उदंत ।

रंग मंच पर प्रकृति नटी के परिवर्तन नित होते हैं ।
अच्छे और बुरे नाना विध दृश्य दृष्टिगत होते हैं ॥
पतन और उत्थान यथा क्रम आते जाते रहते हैं ।
क्षण-भंगुर संसृति का रेखा-चित्र खींचते रहते हैं ॥
जीवन में सुख दुःखादिक का चक्र निरन्तर फिरता है ।
मानव पद के गुण-गौरव का सफल परीक्षण करता है ॥
संकट की घन-घटा सेठ पर भी अब छाने वाली है ।
धैर्य धर्म की अग्नि-परीक्षा उत्कट होने वाली है ॥
स्वीकृत प्रण की मर्यादा को सेठ सगर्व बचाएगा ।
अखिल जगत में सत्य सुयश का दुन्दुभि नाद बजाएगा ॥
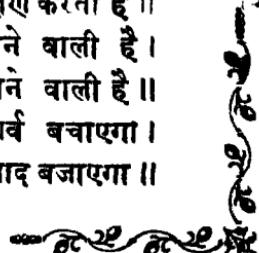
शीतानन्तर ठाठ-बाठ से ऋतु वसन्त झुक आया है ॥
मन्द सुगन्धित मलय समीरण मादकता भर लाया है ॥
छोटे मोटे सभी द्रुमों पर गहरी हरियाली छाई ।
रम्य हरित परिधान पहन कर प्रकृति प्रेयसी मुसकाई ॥
रंग विरंगे पुष्पों से तरुलता सभी आच्छादित हैं ।
भ्रमर-निकर झंकार रहे वन उपवन सभी सुगन्धित हैं ॥
कोकिल-कुल स्वच्छन्द रूप से आम्र मंजरी खाते हैं ।
अन्तर बेधक प्यारा पंचम राग मधुर स्वर गाते हैं ॥
अखिल सृष्टि के अणु अणु में नव यौवन का रँग छाया है ।
कामदेव का अजब नशा जड चेतन पर झलकाया है ॥

वसन्त की शिक्षाएँ !

[तर्ज—शिक्षा दे रहोजी, हमको रामायण अति भारी]

शिक्षा दे रही जी, हमको, ऋतु वसन्त हितकारी (ध्रुव)
वृक्षों ने पतझड़ मे पहले त्यागी वैभव सारी,
दूनी तिगुनी शोभा के फिर वे बने खूब अधिकारी ।
फूलो जैसा जीवन रचिए, बनिए पर उपकारी,
तोडने वाले हाथों को भी करे सुगन्धित भारी ।
आम्र मंजरी खाकर कोयल बोले वाणी प्यारी,
सन्तो के वचनामृत पीकर लो निज दशा सुधारी ।
सद्‌गुणशाली सज्जन जो भी मिल जावें अविकारी,
पुष्प सुगन्धित पर भृंगो के तुल्य झुको हर वारी ।
पुष्पफलान्वित तरु शाखाएँ झुकती नम्र विचारी;
'अमर' बड़प्पन पाकर सीखो झुकना सब नर नारी ।

× × × ×

भारत मे प्राचीन काल से प्रथा चली यह आती है ।
आये वर्ष वसन्तोत्सव मे वन-क्रीडा की जाती है ॥
चपा वासी नर नारी भी समुद वसन्त मनाते हैं ।
पुष्पारामो मे बहु विधि आमोद प्रमोद रचाते हैं ॥
सघन कुज मे कोकिल-कठी बाला मधु बरसाती हैं ।
मजुल गायन गाती है, वीणादिक मधुर बजाती है ॥
बड़े प्रेम से प्रीति-भोज सब मित्र परस्पर करते है ।
वन उपवन मे जहाँ तहाँ नर नारि घूमते फिरते हैं ॥
सेठ सुदर्शन की पत्नी भी चली वसत मनाने को ।
स्वर्गाङ्गण-सी वन स्थली मे अपना मन बहलाने को ॥
वस्त्राभूषण से सज्जित हो अति सुन्दर रथ मे बैठी ।
स्वर्ग-लोक की दिव्य अप्सरा रत्नज्योति सी जा बैठी ॥
आस-पास मे सखी वृन्द सगीत वसती गाता था ।
मातृ- गोद मे पुत्र-युगल भी शोभा अभिनव पाता था ॥

दोहा

आया रथ चलता हुआ, राज महल के पास,
राणी अभया गोख में, बैठी थी सविलास ।
आस पास में था जुड़ा, सखियों का परिवार,
बैठी थी कपिला वहीं, कपिल पुरोहित नार ।
देखी सती मनोरमा, देखे सुत सुकुमार,
राणी अति विस्मित हुई, चौकी चित्त मँझार ।

"देवी है, सच-मुच ही यह तो रूप गवाही देता है ।
आँखो मे सौन्दर्य-सुधा से ठंढक सी भर देता है ॥

देखा ऐसा रूप आज तक नहीं किसी भी नारी का।
स्वर्ण मूर्ति सी राज रही कुछ पार नहीं छवि प्यारी का॥
चन्द्र विम्ब-सम मुख-मंडल पर दिव्य मधुरिमा टपक रही।
अंग अंग पर ललित लुनाई, सुघड़ाई है झलक रही॥
अहा, इधर भी अजब गजब की मनमोहक छवि छाई है।
बाल-युगल मे अखिल विश्व की रूप राशि भर आई है॥
कैसी सुन्दर अभिनव जोड़ी सूर्य चन्द्र सी लगती है!
जग-प्रसिद्ध नल कूवर की जोडी सी असली लगती है॥
तप्त स्वर्ण सा कान्तिमान तनु पूर्णतया है गठा हुआ।
मन्दहास्य-युत आनन है अरविन्द कमल-सा खिला हुआ॥
बाल्य काल की प्रकृति-चपलता रँग मे रँग बरसाती है।
रूप राशि में अपनी कुछ अभिनव ही छटा दिखाती है॥
जब कि पुत्र ही ऐसे है तो पिता न जाने क्या होगा?
वह तो सचमुच कामदेव ही मानव-देह-धारी होगा॥
रभा! अगर जानती हो तो बता कौन यह नारी है?
और फूल से इन पुत्रों का कौन पिता सुखकारी है॥"
दासी रभा बड़े गर्व से बोली "क्यो न जानती हूँ?
चपा वासी सेठो को मै भली भाँति पहचानती हूँ॥
विज्ञ सुदर्शन सेठ हमारे नगर सेठ कहलाते है।
चंपापुर के जो कि दूसरे राजा माने जाते है॥
वैभव का कुछ पार नहीं दिन रात द्रव्य का नद बहता।
दीनबन्धु है, पर-उपकारी, नही किसी को कुछ कहता॥
कहूँ रूप की बाबत मे क्या, सुन्दरता का पुतला है।
मेरी आँखो से तो अब तक रूप न ऐसा निकला है॥

जैन धर्म का पालन करने वाला दृढ़ विश्वासी है।
त्यागी है, वैरागी है, घर बैठा भी संन्यासी है॥
स्वामिनि ! मनोरमा सतवन्ती उस ही की सेठानी है।
पुत्र-रत्न की जुगल जोट भी उस ही की लासानी है॥"
सुनते ही इतना कपिला तो चौक एकदम उछल पड़ी।
'झूठ ! झूठ !!' कहकर दासी पर बडे जोर से उबल पड़ी॥
"रभा ! क्यो तू बिना बात की झूठी गप्प लडाती है।
शर्म न आती है तुझको जो सिल पर सिल सरकाती है॥

और जगह क्या खाक टलेगी राणी को बहकाती है।
सेठ सुदर्शन के जो दो दो पुत्र-रत्न बतलाती है॥
सेठ बिचारा जन्मकाल से है हिजड़ा अति दुखियारा।
कैसे हो सकता हिजड़े घर पुत्र रत्न का उजियारा॥"
रभा बोली "मिसराइन ! फिरती हो किसकी बहकाई।
झूठा दोष लगाते तुमको तनिक नही लज्जा आई॥
पूर्ण सत्य है, अटल सत्य है, जो कुछ भी मैं कहती हूँ।
चंपा का बच्चा-बच्चा जो कहता है, वह कहती हूँ॥
महलो की चहार दिवारी मे तुम निज जन्म गँवाती हो।
कौन मर्द है, कौन हीजड़ा ? भेद कहाँ से पाती हो ?"
बोली कपिला बड़े गर्व से "मैं भी सच्ची कहती हूँ।
सेठ सुदर्शन हिजडा ही है, कहती हूँ, फिर कहती हूँ॥
गुप्त बात है यह अवश्य, पर मुझ से क्या यह छानी है।
महलों के अन्दर भी मैंने स्वय सत्यता जानी है॥
बडा दुष्ट है, धन के बल पर इस नारी से ब्याह किया।
हा ! मनोरमा-सी देवी को मँझधारा में डुबो दिया॥

क्या करती, बेचारी आखिर जारज सुत उत्पन्न हुए।
अंदर की है कौन जानता, सेठ-पुत्र विख्यात हुए॥"
कहना था इतना कपिला का, रंभा का मुख लाल हुआ।
नहीं क्रोध का पार रहा, तन मन मे इक भौंचाल हुआ॥
"लाज शर्म कुछ तो रखियेगा, नहीं बेहया बनिएगा।
सत्यवती सेठानी जी पर व्यर्थ कलंक न धरिएगा॥
शील धर्म भी दुनियाँ में है, कुछ तो श्रद्धा रखिएगा।
अपनी ही सी सारे जग की, ललनाएँ न समझिएगा॥"

दोहा

बातों बातो में बढ़ी दोनों में तकरार,
व्यर्थ क्लेश के कार्य में, फँसता यों संसार।
अभया राणी ले गई, कपिला को एकान्त,
स्पष्टतया पूछा सभी, बीता सब वृतान्त।

राणी का प्रश्न

[तर्ज—सीया राम अयोध्या बुलालो मुझे]

कैसी बाते है सारी बतादे सखी!
जैसी बीती हो वैसी सुनादे सखी! (ध्रुव)—
प्रेम से जब दो हृदय मिलते वहाँ क्या भेद है,
भेद होता है जहां, बस प्रेम का उच्छेद है,
पर्दा दिल से दुई का हटादे सखी,
हीजड़ा क्यो कर भला तू सेठ को है मानती,
जबकि दुनिया पुत्र वाला उस धनिक को मानती,
असली अन्दर का भेद बतादे सखी!

रात-दिन सा दासी और तेरे कथन मे फर्क है,
जान लू सच झूठ क्या है, बस यही मम तर्क है,
भारी उलझन है, यह सुलझा दे सखी !

कपिला का उत्तर

[तर्ज—सीया राम अयोध्या बुलाओ मुझे]

कैसे अन्दर का भेद बताऊँ सखी !
लज्जा आती है कैसे सुनाऊँ सखी ! (ध्रुव)

क्या कहूँ, क्या ना कहूँ, दिल मे बडा सकोच है,
व्यर्थ के झगड़े मे पड जाने का अति ही सोच है,
कैसे लज्जा का पर्दा हटाऊँ सखी !

प्रेम कहता है, हृदय के भाव सारे खोल दूँ,
बुद्धि कहती, जुल्म हो जाएगा गर सच बोल दूँ,
कैसे अपयश का दाग लगाऊँ सखी !

खास घटना मेरे जीवन मे बनी है, क्या कहूँ,
क्या करेगी पूछ कर, बस आज तो माफी चहूँ,
मैं ना चाहूँ कि बात बढाऊँ सखी !

राणी बोली प्रेमाग्रह से "कपिला ! क्यो घबराती है ?
आगे कदम बढा कर अब फिर पीछे क्यो खिसकाती है ?
बातो ही बातो मे आधा गुह्य तत्व तो निकल गया।
क्यो न साफ कह देती है निज मुख से ही सब रहस नया ॥
लेश मात्र भी अब तक मैंने तुझ से फर्क न रक्खा है।
दो देहो मे एक प्राण का स्वर झकृत कर रक्खा है ॥

जो तू बात कहेगी मुझ से कभी न बाहर जाएगी।
कानों से सुन कर के अभया नहीं जीभ पर लाएगी॥
जो स्नेही की गुप्त बात को गुड्डा बाँध उड़ाते हैं।
वे जाहिल मक्कार नर्क मे लाखों धक्के खाते हैं॥"
राणी के प्रण से कपिला के मन मे साहस भर आया।
अन्तर मे चिर रुद्ध पाप का स्रोत उमड़ मुख पर आया॥
साफ साफ अथ से इति यावत पाप कहानी कह डाली।
पापिन ने इक और पाप की नींव महा भीषण डाली॥
कथा पूर्ति मे कपिला ने जब हिजड़ेपन का न्यास किया।
राणी ने तब करतल-ध्वनि के साथ विकट उपहास किया॥
"भूल गई सारी चतुराई कपिला! तू तो भूल गई।
वैश्य पुत्र के आगे ब्राह्मण जाति हेकड़ी भूल गई॥
सेठ साफ बच गया चाल से धूल झौंक दी आखो मे।
ज्ञात हुआ है—वह बनिया भी है चतुर एक ही लाखो मे॥
दासी का कहना सच्चा है, न है वस्तुत: वह हिजडा।
शील धर्म की रक्षा के हित मार्ग झूँठ का था पकडा॥
महाशक्ति का जग मे नारी दृढ़ अवतार कहाती है।
अखिल सृष्टि के पुरुषों को मन चाहा नाच नचाती है॥
आती है जब अपने पर तो ऐसा जाल बिछाती है।
मानव तो क्या देवो तक की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है॥
वणिक पुत्र भी नही फँसाया गया जाल मे हा तुझ से?
विश्व मोहिनी ललनाओ का डूबा गौरव हा तुझ से॥
काम भी न बन सका व्यर्थ ही तूने लाज गँवाई है।
वणिक चक्र मे उलझ गई, बदनामी बुरी कमाई है॥

माल मुफ्त का मरे गलों का मौज शौक़ से खाती है।
दान पुण्य के भोजन से जीवन निस्तेज बनाती है॥"
स्वाभिमान कपिला का इतना सुन कर सहसा जाग उठा।
बोली अभया से—तन मन मे रोष हुताशन भड़क उठा॥
"राणी जी ! निज चतुराई पर अभी न ज्यादा इतरावें।
ताने मार मार कर मत यो दीन ब्राह्मणी कलपावें॥
मैं विमूढ हूँ, मेरे वश मे नही पुरुष हो सकते हैं।
किन्तु आपके चरणो मे तो सुर भी नत हो सकते है॥
अगर शक्ति है, मुझ को भी कुछ चमत्कार दिखला दीजे।
सेठ सुदर्शन को वश मे कर मेरा भी बदला लीजे॥
क्षत्राणी उस दिन ही मैं भी तुमको असली समझूँगी।
हृदयहीन को जब कि तुम्हारा प्रेम भिखारी देखूँगी॥
नारी जग की लाज कृपा करके अब तुमही रखिएगा।
अभिमानी धर्मान्ध सेठ को शीघ्र पराजित करिएगा॥"

दोहा

राणी अभया ने सुने कपिला के उद्गार,
रोम रोम में गर्व की गूँज उठी झनकार।
सकट के काले कुदिन आते हैं जिस बार,
छा जाता है बुद्धि पर घोर घुप्प अँधकार।
मद हास्य हँस प्रेम से बोली साहकार,
कपिला को देने लगी मीठी सी फटकार।

"क्या कहूँ सखी ! कपिला तुझको, किस भ्रम मे भूली फिरती है
राणी अभया को अपने दिल मे तू कुछ न समझती है॥

अखिल राष्ट्र मे पूर्णतया मेरा ही शासन चलता है।
टल सकता है हुक्म भूप का, पर मेरा कब टलता है ॥
चमत्कार देखेगी ? अच्छा तुझे सभी दिखला दूँगी।
सेठ सुदर्शन को निज पद-कमलों का भ्रमर बना दूँगी ॥
पागल बना प्रेम पर अपने नाना नाच नचाऊँगी।
मक्कारी सब भुला काठ का उल्लू उसे बनाऊँगी ॥
अगर आज का प्रण मैं अपना पूर्ण नही कर पाऊँगी।
सौ बातों की बात तुझे फिर अपना मुख न दिखाऊँगी ॥"
तदनन्तर कर नमस्कार कपिला ने भी प्रस्थान किया।
राणी ने भी इधर शीघ्र ही रभा का आह्वान किया ॥

५

अभया का कुचक्र

दोहा

अभया अपने हाथ से करती है क्या काम,
हो ती है मति अति विकल होता जब विधि वाम ।

"रंभा ! तेरी चतुराई की आज परीक्षा होनी है ।
अन्तस्तल मे ज्वलनशील मम मदन-यत्रणा खोनी है ।।
सेठ सुदर्शन की मोहक रूप च्छवि हृदय समाई है ।
कैसे मिलू , करू क्या कुछ,तन मन की सुध बिसराई है ।।
सेठ साहब को एक बार बस महलो मे लाना होगा ।
चाहे कुछ हो पार मनोरथसागर के जाना होगा ।।
कोई चाल चला ऐसी, जो कार्य शीघ्र ही बन जावे ।
और साथ ही इस छल-बल का भेद नही खुलने पावे ।।"
राणी की यह सुनी जहर से भरी बात तो चौक पड़ी ।
भूल गई सुध बुध सारी मानो मस्तक पर गाज पड़ी ।।

हाथ जोड़ कर विनय भाव से बोली रंभा वचन रसाल।
स्पष्टरूप से कहे, उठे जो अपने दिल मे शुद्ध ख़याल॥

रंभा का समझाना !

[तर्ज—जब तेरी डोली निकाली जायगी]

राज राणी ! क्या समाई आज दिन ?
बात गदी क्या सुनाई आज दिन ?
आप तो विदुषी बड़ी धीमान हो,
सोचिए, ऐसा कि जग-सम्मान हो,
लोक लज्जा क्यो हटाई आज दिन !
शील मे आदर्श थीं हम को तुम्ही,
पातिव्रत की मूर्ति थी अभिनव तुम्ही,
कहाँ वह शुचिता गँवाई आज दिन !
सेठजी है धर्म पर अपने अटल,
मन्दराचल-तुल्य है बिल्कुल अचल,
शील की धूनी रमाई आज दिन !
लाख कीजे यत्न डिगने का नही,
प्राण देगा, धर्म तजने का नही,
व्यर्थ क्यो करती हँसाई आज दिन !
भूप सुन पावे, करे मिट्टी ख़राब,
सभी फाँसी पर चढ़ें, क्या है बचाव,
बात बेढंगी उठाई आज दिन !
काम यह मुझसे कभी होगा नहीं,
साफ़ कहती हूँ, ज़रा धोखा नही,
जुल्म से चाहूँ रिहाई आज दिन !

मानवी चोला मिला सत्कर्म से,
भ्रष्ट क्यो करती भला दुष्कर्म से,
लीजिए, जग मे भलाई आज दिन !

राणी का उत्तर !

अरी तू देती मुझे क्या ज्ञान ?
रभा तेरी कैंची मे भी चलती अधिक जबान !
मालिक से किस भॉति बोलना तुझे नही कुछ भान,
झूठा ज्ञान छोकने मे ही रहती नित गल्तान !
धर्म धर्म की मचा दुहाई व्यर्थ फोडती कान,
मुझको बिल्कुल पतित समझती बनती खुद गुणवान !
कार्य प्रिय नही मेरा तुझको प्यारे है निज प्रान,
व्यर्थ धर्म की आड लगा कर करती मम अपमान !
धर्म-कर्म कुछ नही, ढौंग है, मात्र अतथ्य वितान,
जो कुछ भी है, सभी यही है, आगे है सुनसान !
चुपके से यह कार्य बना दे कहना मेरा मान,
देख, अन्यथा मै अभया हूँ भूलगी सब शान !
नहीं जानती कहने भर से क्या होगा तूफान,
खाल खिचा भुस भरवा दूँगी रोवेगी नादान।
सेठ वेठ क्या चीज बिचारा भूले झट औसान,
नारी मोहन मत्र अजब है मोहित हो भगवान !
मत ना भय कर किसी बात का निर्भय कारज ठान,
राजा मेरी मुट्ठी मे है नही उसे कुछ ध्यान !

रभा ने अभया राणी का क्रोध-पूर्ण वक्तव्य सुना।
घूंट जहर सी कडवी पीकर मौन शान्ति का मार्ग चुना ॥

समझा मन में "अगर इसे कुछ और अधिक समझाऊँगी।
ना जाने क्या कुछ हो जाए, व्यर्थ सताई जाऊँगी॥
बुद्धि भ्रष्ट होगई सर्वथा काम-ज्वर का जोर हुआ।
भाग्य-सूर्य छिप गया हन्त! दुर्भाग्य ध्वान्त घनघोर हुआ॥
मुझे पड़ी क्या, यही स्वयं निज करनी का फल पाएगी।
पाप प्रगट जब होगा तब कर मल मल के पछताएगी॥

पारतन्त्र्य के पाश फँसी हूँ शिक्षा का अधिकार कहाँ?
दासी तो गूंगी होती है जिह्वा की झनकार कहाँ?"
दिल मसोस गिर पड़ी चरन मे, कपट-नम्र हो यों बोली।
"क्षमा करें अपराध स्वामिनी! मै बांदी हूँ अति भोली॥
बोलचाल का ढंग मुझे बिलकुल न सत्य ही आता है।
अन्दर है कुछ और भाव, पर निकल और ही जाता है॥

रंभा तो चरणो की चेरी, जन्म जन्म की दासी है।
कैसे तुमसे अलग हो सके, पूर्णतया विश्वासी है॥
कार्य आपका सफल करूंगी, ऐसा मन्त्र चलाऊंगी।
सेठ सुदर्शन मानी को चरणो पर शीघ्र झुकाऊ गी॥

झेलू गी सब कष्ट, प्राण अपनो की भेंट चढा दूंगी।
'रंभा तुझे धन्य है' इक दिन श्रीमुख से कहला दूंगी॥"
रंभा के मधु वचन सुने तो अभया का मुख कमल खिला।
हर्षमत्त हो नाच उठी, काफूर हुआ सब रंज गिला॥

"रंभा! तू सचमुच रभा है, जो चाहे कर सकती है।
आज विश्व मे तू ही, मेरा अखिल दुःख हर सकती है॥
तू ने ही सब उलझन मेरी आज तलक सुलझाई हैं।
मन में जो कुछ उठीं भावना झटपट सफल बनाई हैं॥

आशा क्या, निश्चय है, यह भी कार्य सिद्ध तुझ से होगा।
अब के भी यश मुकुट मनोहर तेरे ही शिर पर होगा।।"
कहते कहते शीघ्र कंठ से स्वर्ण हार निज काढ लिया।
चम-चम करता रंभा की गर्दन मे खुश हो डाल दिया।।
देखा, कैसा अजब ढंग है स्वार्थी दुनिया-दारी का।
पूर्ण अटल है राज्य सर्वत. बदकारी मक्कारी का।।
झूठे मौज करे मन चाही, सच्चो का मुँह काला है।
धोखेबाजो ने भोली जनता पर फंदा डाला है।।
सत्य कहे तो मारन धावे, झूठे जग पतियाते है।
कपट कृपा से माल मुफ्त का अनायास हथियाते है।।

[तर्ज—कौन कहता है कि जालिम को सजा मिलती नही ?]

कौन सुनता है किसी की सच्ची बाते आजकल,
सत्य भक्तो की निकाली जाती आते आजकल।
प्रेम से हित से सुनाएँ गर कही हित के वचन,
सहस्र-वृश्चिक-दंश की ज्यों तिलमिलाते आजकल।
गैर तो क्या मित्र होगे, सत्य की शिक्षा दिये,
प्राण प्यारे भी कुटिल आँखे दिखाते आजकल।
'हाँ' मे 'हाँ' रहिए मिलाते बनिए पक्के जी हुजूर,
हाँ जी के पुतले ही गुलछर्रे उड़ाते आजकल।
झूठ तेरा राज्य है, चहुँ ओर तेरी पूछ है,
झूठ के बल शठ भी जग मान पाते आजकल।
हा खुशामद ने दिया तख्ता पलट संसार का,
रात्रि मे रवि दिन मे तारागण उगाते आजकल।
आयगा वह भी समय मिट जायगा दुनिया से खोज,
झूठ की वंशी "अमर" हँस हँस बजाते आजकल।।

रंभा ने सब काम छोड़, अब यही काम अपनाया है।
नित नई कल्पना करती है, चिन्ता का चक्र चलाया है॥
"राज महल पर पहरा है, किस तरह सेठ को ले आऊं?
कठिन समस्या अड़ी खड़ी है, कैसे इसको सुलझाऊं?"
बैठी थी एकान्त अचानक यह विचार मन में आया।
रंभा के मूर्छित मानस मे स्पन्दन का दौरा आया॥
दौड़ी गई उसी दम, जाकर मूर्तिकार से बतलाई।
सेठ सुदर्शन की असली मिट्टी की मूरत बनवाई॥
लाल वस्त्र से ढँक मस्तक पर रख दरवाजे आई है।
द्वारपालकों के ठगने की क्या तरकीब लड़ाई है॥
पहली ड्योढी पर प्रहरी ने रोकी, "क्या ले जाती है?
मस्तक पर क्या बला छुपी है? मुझ को क्यो न दिखाती है?"
रभा बोली "तुझे मूढ! कुछ पता नहीं है, मैं क्या हूँ?
राज-महल की एक मात्र विश्वास-पात्र नव बाला हूँ॥
राणी जी इन दिनो वैश्रमण देव अर्चना करती हैं।
भक्ति-भाव से भेंट चढ़ा कर पुत्र-कामना करती हैं॥
एतदर्थ राणीजी ने यह देव मूर्ति मँगवाई है।
वस्त्र-ढँकी ही ले जानी है, अस्तु नहीं दिखलाई है॥
आज्ञा जैसी मिली मुझे है, करके वही निभाऊँगी।
चाहे कुछ भी करले मूरत बिल्कुल नहीं दिखाऊँगी॥"
द्वारपाल ने कहा—"व्यर्थ ही रंभा! तू हठ करती है।
राजा का है हुक्म, बिना देखे कैसे जा सकती है॥
मैं भी देखूंगा तू कैसे मुझे नही दिखलाएगी?
राजाज्ञा कर भंग, महल के अन्दर कैसे जाएगी?"

रंभा ने यह द्वारपाल का वचन सुना तो क्रुद्ध हुई।
पटक दई ऊपर से मूरत, खंड खंड हो भग्न हुई॥
बोली कृत्रिम क्रोध बता कर-"इसका मजा चखाऊँगी।
जाती हूँ, राणी से कह कर फाँसी पर लटकाऊँगी॥
पूजा जैसी मंगल-कृति में महा भयंकर विघ्न किया।
राणीजी के इष्ट देव का तूने अति अपमान किया॥"
द्वारपाल घबराया दिल में गर्व मेरु चकचूर हुआ।
हाथ जोड कर लगा मनाने 'जी-जी' का मजदूर हुआ॥
"ग़लती मुझसे विकट हुई, पर क्षमा कीजिए करुणा ला।
राणी से बिल्कुल मत कहना, मूर्ति दूसरी देना ला॥
आगे को कुछ भी ले जाना, मैं न कभी भी रोकूंगा।
सभी भाँति सहयोग करूंगा, गलती यह सब धो दूंगा॥"
रंभा राजी हुई मनोरथ पूर्ण हुआ सब काम बना।
द्वारपाल प्रतिरोधी था वह अनुरोधी अभिराम बना॥
चालाकी से इसी भाँति सातों दरवाजे खोल लिए।
द्वारपाल सातों ही अपने भावों के अनुकूल किए॥
मस्तक पै रख मूर्ति मजे से प्रतिदिन आती जाती है।
कई मर्तबा देखा परखा, रोक नहीं कुछ पाती है॥

६

सुदर्शन का धर्माराधन

दोहा

सेठ सुदर्शन का इधर, सुनिए अन्य वृतान्त,
कैसे मृदु जीवन बना, वज्र कठिन उत्क्रान्त ।
भोग रहे थे सेठजी, सुख पूर्वक गृह-वास,
पुण्ययोग से दु ख का, था न ज़रा अवकाश ।

शरत काल का समय अनोपम कार्तिक मास सुहाया है ।
श्रेष्ठ कौमुदी उत्सव प्यारा पूनम के दिन आया है ॥
भारत मे यह उत्सव भी अति मंगल-कारी होता था ।
युवक वृन्द इक नई लहर मे उस दिन खाता गोता था ॥
सूर्योदय से सूर्योदय तक उपवन में ही रहते थे ।
शान्त स्वच्छ शीतल रजनी में नृत्य गान सब करते थे ॥

राजाज्ञा से कोई भी नर नहीं नगर मे रह सकता।
गुप्त रूप से रह जाने पर राज दण्ड शिर पर झुकता ॥
और नगर मे इधर स्त्रियाँ निज स्वातंत्र्य मनाती थी।
रगरेलियाँ, करती हिलमिल प्रेम पयोधि बहाती थी ॥
सेठ सुदर्शन जी ने इस दिन परम पुण्य सकल्प किया।
भोग मार्ग तज आत्म शुद्धि के अर्थ त्याग का मार्ग लिया॥
अन्तिम तिथि है चौमासे की पौषध का व्रत करना है।
गुरुवर से प्रण कर रक्खा है, भोग मार्ग यह तजना है ॥
राजा के जा पास नगर मे रहने की स्वीकृति ले ली।
धन्य सुदर्शन धर्म कौमुदी-उत्सव की क्रीडा खेली ॥

निर्जन सी एकान्त जगह मे पौषधशाला सुन्दर थी।
वातावरण शान्त था कोई खटपट थी ना गडबड थी ॥

काष्ठ-पट्ट पर शुद्ध स्वदेशी आसन विमल बिछाया है।
पद्मासन सानन्द लगा दृढ पौषध व्रत अपनाया है ॥

वीर प्रभू की साक्षी से की अटल प्रतिज्ञा अगीकार।
गूँज उठी मन मन्दिर मे जिन धर्म-विपची की झनकार ॥
"भगवन! अब से सूर्योदय तक तजता हूँ चारों आहार।
काम,क्रोध,मद,लोभ, मृषादिक तजू अठारह पापाचार ॥
संसारी गृह-झझट से विश्रान्ति आज कुछ लेता हूँ।
आत्म-साधना मे तन, मन का योग क्लेश-हर देता हूँ ॥
लेशमात्र भी पाप कर्म का भाव न दिल मे लाऊँगा।
अन्तस्तल मे धर्म ध्यान का सुन्दर साज सजाऊँगा ॥
चाहे कुछ भी सकट आए स्वीकृत पथ न छोडूंगा।
फँसकर सुखद प्रलोभन मे भी हर्गिज स्वव्रत न तोडूंगा ॥"

पौषध व्रत को सफल बनाते दिन सानन्द समाप्त किया।
शीतलतम रजनी ने आकर उष्ण दिवस का स्थान लिया ॥
शुद्ध हृदय से पाप पंकहर प्रतिक्रमण विधि से कीना।
शास्त्र रीति से कृत पापों का प्रायश्चित विधि से लीना ॥
प्रतिक्रमण से निवट जिनेन्द्र स्तुति के पथ की ओर बढ़ा।
भक्तिसुधा की सुर-सरिता का कलिमलहरण प्रवाह चढ़ा ॥
वीर प्रभू के श्री चरणो मे नम्र प्रार्थना करता है।
स्वार्थ-रहित सुविशुद्ध भक्ति का रूपक प्रस्तुत करता है ॥

प्रार्थना

[तर्ज—कनीयर वाला मेरा सांई निभाई जिन लाबई यारियाँ]

जीवन सफल बनाना, बनाना, प्रभू वीर जिनराज जी (ध्रुव)

हृदय-मन्दिर मे घुप है अँधेरा,
ज्ञान की ज्योति जगाना, जगाना प्रभू०।
धँधक रहा है द्वेष दावानल,
प्रेम-पयोधि बहाना, बहाना प्रभू०
भोग-वासना दाह लगी है,
अन्तर-तपत बुझाना, बुझाना प्रभू०।
अगम भँवर मे नैया फँसी है,
झट पट पार लँघाना, लँघाना प्रभू०।
न्याय मार्ग का पक्ष न छोड़ूँ,
दुश्मन हो सारा जमाना, जमाना प्रभू०।
उत्कट संकट हँस हँस झेलूं,
अविचल धैर्य बँधाना, बँधाना प्रभू०।

प्राणी-मात्र को सुख उपजाऊँ,
चाहूँ न चित्त दुखाना, दुखाना प्रभू० !
मै भी तुमसा जिन बन जाऊँ,
परदा दुई का हटाना, हटाना प्रभू० !
'अमर' निरन्तर आगे बढ़ूं मै,
कर्तव्य-वीर बनाना, बनाना प्रभू० !

× × × ×

करते-करते सेठ प्रार्थना अति आनन्द विभोर हुआ।
भक्त-हृदय मे भावुकता का सरस स्रोत झकझोर हुआ॥
"वीतराग तव शरण जगत मे एकमात्र सुखदायी है -
घोर दुखों के आने पर भी होता तुही सहायी है॥
भक्तों का जो कुछ गौरव है मात्र तुम्हारी करुणा है।
दीन बन्धु ! मुझको तो तुम से बढकर और न शरणा है॥
आजावो मन मन्दिर मे हे नाथ ! शीघ्रतम आजावो।
पापपक से पूरित मेरा हृदय पवित्र बना जावो॥
दो घंटे तक नाथ तुम्हारा ध्यान हृदय मे लाऊंगा।
मौन रहूँगा, तुम्हे रटूंगा, जग की ओर न जाऊंगा॥"

७

अग्नि-परीक्षा

दोहा

धार्मिक जन निज धर्म में रहते यों सलग्न ।
पापात्मा आकर वृथा करते नर्तन नग्न ॥

सेठ सुदर्शन जी ने इस विधि प्रभु का ध्यान लगाया है ।
रंभा ने उस ओर दंभ का पूरा जाल बिछाया है ॥
देख लिया था दिन में ही सब मौका मायाचारी का ।
चली सेठ को सिर पर रख आगया नाश हत्यारी का ॥
ध्यान मग्न था सेठ, प्रतिज्ञा अपनी पर मजबूत रहा ।
बोला नहीं जरा भी पहले जैसा ही दृढ़ मौन रहा ॥
द्वारपाल थे पहले भ्रम में नहीं बिचारे कुछ बोले ।
धोखे में फँस हो जाते हैं चतुर विचक्षण भी भोले ॥

निधड़क सब के आगे से ही राज-महल में पहुँच गई।
भडा फोड़ हुआ न बीच में, निर्भयता की सांस लई॥
पहले से ही निश्चित था जो पूर्ण सुसज्जित शयनागार।
फैल रहा था जिसके अणु-अणु मे भी कलुषित विषय विकार॥
बैठा सेठ सुदर्शन को वह राणी से आकर बोली।
कीजे भेट सुदर्शन से भर लीजे अब सुख की झोली॥
मैंने तो निज कार्य पूर्ण कर दिया तवाज्ञा पाली है।
आगे तुम वह महल खडा करलो कि नींव जो डाली है॥

दोहा

राणी अपने चित्त में, हर्षित हुई अपार,
चली शयन-आगार को, सज सोलह शृंगार।
रूप मनोहर खिल उठा, इन्द्राणी अनुहार,
झलमल झलमल हो रही, शोभा का क्या पार।

रक्खा पैर भवन मे ज्योंही दृश्य और का और हुआ।
रूप रंग निज-प्रकृति-विमोहकता मे मोहक और हुआ॥
रंग रंगीले झाडों से रंगदार रोशनी झड़ती थी।
पड़ती थी राणी के मुख पर सुन्दर अति ही लगती थी॥
नाना भाँति सुगन्ध महल में मादकता बरसाता था।
काम-सरोवर अपनी पूरी सीमा पर लहराता था॥
राणी ने जो सेठ सुदर्शन देखा तो बस चकित रही।
बैठा था साक्षात इन्द्र सौन्दर्य-सुधा थी बरस रही॥
आखें झपकी एक बार तो सह न सकी वह तेज प्रचंड।
आधा तो बस दर्शन से ही हुआ विलज्जित रूप घमंड॥

साहस करके फिर भी अपना जाल बिछाना चाहा है।
प्रेमभाव से गदगद हो चरणों मे शीक झुकाया है ॥
"प्राणनाथ ! मैं बहुत दिनों से तव दर्शन की प्यासी थी।
जलधर के प्रति चातक की जैसी दृढ रटना लागी थी ॥
मुझे आपका एक सखी ने मोहन रूप सुनाया था।
तब से ही मम हृदय भवन में प्यारा नाम समाया था ॥
रंभा के द्वारा मैंने ही तुम्हे यहाँ बुलवाया है।
मनोवासना पूर्ति-हेतु यह सारा साज सजाया है ॥
राजा जी है गये आज उपवन मे क्रीड़ा करने को।
आजादी के साथ सुअवसर पाया तुमसे मिलने को ॥
राजा का या और किसी का भय न हृदय मे रखियेगा।
दासी की चिर अभिलाषा निःशंक पूर्ण अब करियेगा ॥"
राणी के बचनो का कुछ भी नहीं सेठ पर असर हुआ।
ध्यान-मग्न पहले जैसा ही रहा न चचल चित्त हुआ ॥
वैरागी मुख चन्द्र बिम्ब पर नहीं विकृति छाया आई।
राणी खुद ही हतप्रभ सी हो मन ही मन में शरमाई ॥
हाव भाव के साथ विलासी बचनो से फिर भी बोली।
खुल्लम खुल्ला नग्न वासनाओं की विष गठरी खोली ॥

राणी क्या कहती है ?

(तर्ज—रसिया, अब आगया कलजुग घोर, पाप का जोर हुआ भारी)

भोगो भोग प्रेम के आज सेठ जी नई जवानी है,
नई जवानी है, सेठ जी नई जवानी है।
सूरत मोहन गारी प्यारी नयन-समानी है,
तन मन धन सब वारूँ तुझ पर तू दिल जानी है।

दासी श्रीचरणों की अभया, नहीं बिगानी है,
रूप माधुरी मुग्ध तुम्हारे हाथ बिकानी है।
तड़फत हूँ दिन रैन मछलिया ज्यो बिन पानी है,
आग बिरह की सुलग रही, वह आज बुझानी है।
आंख खोल कर देखो कैसी छबि लासानी है,
रूप गर्विता इन्द्राणी भी देख लजानी है।
स्वर्ग नर्क के भ्रम मे दुनिया व्यर्थ भुलानी है,
झूठा धुंधपसारा ना कुछ आनी जानी है।
यौवन वय मे जप तप करना शक्ति गँवानी है,
कोमल कंचन वर्णी काया हाय सुकानी है।
भोगो भोग मजे से जब तक यह जिन्दगानी है,
आखिर पाँच तत्व की पुतली गल सड जानी है।
अवसर नाथ लगा खो देना अति नादानी है,
दया कीजिए नाथ! प्रेम की गाठ जुडानी है।

मौन प्रतिज्ञा पूर्ण हुई अब ध्यान सेठ ने खोला है।
राणी समझी काम बना दृढ आसन कुछ तो डोला है॥
लेकिन सेठ सुदर्शन के मन नही विकृत की रेखा थी।
गिरिराज हिमाचल सा दृढ था डिगने की कुछ न अपेक्षा थी।
फिर भी राणी को समझा सत्पथ पर लाना चाहा है।
पतन गर्त मे गिरने से अविलम्ब बचाना चाहा है॥
"माता जी! श्रीमुख मे यह क्या गदा जहर उगलती है।
शान्त हृदय विक्षुब्ध हुआ है रग रग मेरी जलती हैं॥
राज महिषि जनता की माता शास्त्र गवाही देता है।
यह गदा प्रस्ताव आपके मुख शोभा कब देता है॥

कामवासना पूर्ति चाहती हो पुत्रों द्वारा कैसे ?
पशुओ जैसा अधम कृत्य यह है तुम को भाया कैसे ?
अगर आपसी राजघराने की ललनाएँ डूबेंगी ?
तो कैसे जग इतर नारिया शील धर्म पर झूमेंगी ?
दुराचरण के पतन मार्ग चढ भार पाप का ढोती है।
क्षणिक सुखो के लिये पतिव्रत धर्म अमोलक खोती हैं ॥
स्वर्ग नर्क का सच्चा भ्रम है, नहीं झूठ का अंश जरा!
अच्छी और बुरी करणी का मिलता है फल सदा खरा॥
भोग-वासना मे फँसने को मिला नही नर तन प्यारा।
जीवन सफल बनाया उसने जिसने शील रत्न धारा॥
बंदे ने तो जब से जग मे कुछ कुछ होश सँभाला है।
माता और बहन सम पर नारी को देखा-भाला है॥
मुझ से तो यह स्वप्न तलक मे भी आशा मत रखिएगा।
तैल नही है इस तिलतुष मे चाहे कुछ भी करिएगा ॥
स्वत स्वर्ग से इन्द्राणी भी पतित बनाने आजाए।
तो भी वज्र-मूर्ति-सा मेरा मन मेरू न डिगा पाए॥
पाप कर्म के फल से मै तो हर दम ही भय खाता हूँ।
और तुम्हे भी माता जी! बस यही भाव समझाता हूँ॥"

क्या समझाता है!

[तर्ज—यह तो चोरो की सारी नगरिया है]

मत पीवे पियाला बिषय रस का (ध्रुव)
काम वासना जहर हलाहल,
नाश करेगी सुकृत रस का ।

ले डूबेगा अगम भँवर मे,
ऐसा लगा है बुरा चसका।
क्यो तू जवानी में हुई है दिवानी,
जीवन है यह दिन दश का।
रंगरेलियाँ धरी ही रहेंगी,
काल अचानक आ धँसका।
दुर्गति मे जब कष्ट पड़ेगे,
नशा उतर जाय नस नस का।
राजवश की तू कुल गृहिणी,
दाग लगा मत अपयश का।
संयम का सत्पथ अपना ले,
मनुष्य जन्म फिर नही वश का।

राणी ने सेठ सुदर्शन से यह रूखा उत्तर पाया है।
अभिलाषा का किला हवाई चिर-तैयार नसाया है॥
"मैं गलती से जिसे मृदुल मिट्टी का ढेला समझी थी।
वज्र-भित्ति सा निकलेगा वह, नही जरा भी समझी थी॥
रूपमाधुरी पर ललचाने वाली नहीं सेठ आसामी है।
पक्का है निज प्रण पर बिल्कुल नही भोग का हामी है॥
जगत विमोहन अस्त्र आखिरी अब इक और चला देखू।
वैभव के अति सुखद प्रलोभन का नव जाल रचा देखूं॥"
"वैरागी जी रहने दीजे, बस विराग की ये बातें।
धूर्त शिरोमणि तुम जैसी की समझूं हूँ सारी घातें॥

अन्दर ज्वाला भड़क रही है, ऊपर धर्म दिखावा है।
क्या लोगे इन बातों मे? हाँ झूठा सब बहकावा है॥"

प्रलोभन का जाल।

[तर्ज—खुदा या कैसी मुसीबतो में ये ताज वाले पड़े हुए हैं]

न ताने ज्यादा, कृपा करें अब बड़ा तुम्हारा लिहाज होगा,
अगरचे राजी करेंगे मुझको सफल तुम्हारा भी काज होगा।
समग्र चंपा का राज्य वैभव तुम्हारे चरणो मे आ झुकेगा,
न देर होगी नरेन्द्रता का तुम्हारे मस्तक पै ताज होगा।
यह महल मन्दिर, यह फौज लश्कर, यह स्वर्ण सिंहासन राजशाही,
तुम्हारी मुट्ठी मे होगा सब कुछ सुरेन्द्र सा सौख्य-समाज होगा।
जुटेंगे सारे सुखो के साधन मज़े मे गुजरेगी ज़िन्दगी सब,
स्वतंत्र शासन सदा चलाना अखंड सब पै स्वराज होगा।
समझलें अब भी न बिगड़ा कुछ है, विनम्रता से कहती हूँ तुमसे,
अगर न माने तो देख लेना ठिकाने जल्दी मिजाज होगा।
लगेगा पल भर, चलेगा खंजर, गिरेगा मस्तक जमी पै कट कर,
तड़फ तड़फ कर बनेगा ठंढा ये जालिमाना इलाज होगा।
न काम आएगा धर्म तेरा कुटुम्ब होगा बर्बाद सारा,
क्यों खोता नाहक अमूल्य जीवन सदा न हर्गिज यह साज होगा।

सेठ-हृदय पर इन बातों का हुआ जरा भी नही असर।
अभया का निकला यह भी जग-मोहनकारी अस्त्र लचर॥
धर्मवीर को कोई भी पथ भ्रष्ट नहीं कर सकता है।
सागर का निस्तब्ध भाव क्या झंझानिल हर सकता है॥
बोला निःसंकोच ज़रा भी नहीं हृदय में सकुचाया।
साफ़ साफ़ शब्दों मे अपना दृढ़ निश्चय यह बतलाया॥

सुदर्शन का उत्तर ।

[तर्ज - बढ़ादे आज की शब और चर्खे पीर थोड़ी सी]

सुदर्शन ऐसी बातों में कभी हर्गिज न आएगा,
खुशी से अपना यह सर सत्य के पथ पर कटाएगा ।
गृहांगण में अमित लक्ष्मी सदा अठखेलियाँ करती,
तुम्हारे तुच्छ वैभव पर भला क्यों कर लुभाएगा ।
जर्डे इस राज्य की गूंगी प्रजा के खून से तर है,
घृणा है स्वप्न तक में ध्यान लेने का न लाएगा ।
मिले यदि इन्द्र का आसन पदच्युत धर्म से होकर,
न लेगा, ठीकरा ले भीख दर दर माग खाएगा ।
डराती क्या है पगली ! मौत का यह डर दिखा करके,
उछल कर जेरे खंजर शीश झट अपना झुकाएगा ।
न कुछ जीवन की परवा है न कुछ मरने का डर दिल मे,
मुसीबत लाख झेलेगा मगर निज प्रण निभाएगा ।
तुझे करना हो सो करले खुशी है छूट तेरे को,
अटल निज सत्य की महिमा सुदर्शन भी दिखाएगा ।

८

अपराधी के रूप में

दोहा

सेठ सुदर्शन का मधुर अमृत मय उपदेश,
अभया को विषमय हुआ, देखो पापावेश।

राणी भड़क उठी यह सुन कर नहीं क्रोध का पार रहा।
तार तार होगई हिता-हित का न जरा सुविचार रहा॥
"झूठे भ्रम मे फँस कर मैंने निज व्यक्तित्व गँवाया है।
काम भी न कुछ बना व्यर्थ ही परदा-फाश कराया है॥
प्रातःकाल हुआ है, कैसे अब निज लाज बचाऊँगी?
सूर्योदय होने वाला है, कैसे इसे छुपाऊँगी?
जालिम ने मम आशाओ पर बिल्कुल पानी फेर दिया।
मै अभया क्या अगर इसे जिन्दा ही सुख में छोड़ दिया॥"

बोली सेठ सुदर्शन से—"ले अब कैसा हाल बनाती हूँ ?
मानी बात नही, अब उसका कैसा मजा चखाती हूँ ?
देख तमाशा मेरा, जौहर अपना क्या दिखलाती हूँ ?
रे जालिम ! मक्कार !! तुझे अब शूली पर चढ़वाती हूँ ॥
मेरे एक हुक्म से तेरा कुछ का कुछ हो जाएगा।
तड़फेगा, सिसकेगा, तन से प्राण जुदा हो जाएगा ॥"
बाल बिखेरे, चीवर फाड़े, विकृत रूप बनाया है।
स्थान-स्थान पर अग नोचकर शोणित सा झलकाया है ॥

आँखो मे आँसू की धारा बही, जोर से चीख उठी।
आस-पास के जनप्रदेश मे, रोदन की ध्वनि गूँज उठी ॥

"दौडो दौडो आज महल मे कौन दुष्ट घुस आया है ?
अकस्मात आकर हा घर सोती को मुझे दबाया है ॥

द्वारपाल गण यह क्रदन सुन करके अति ही घबराए।
हाथो मे ले नग्न खड्ग बस मार मार करते धाए ॥

अन्त.पुर-रक्षक सेना ने भी फौरन ही कूँच किया।
राज-महल पर पलक मारते चहुँ-दिशि घेरा डाल लिया ॥

सेनापति कुछ सैनिक लेकर, शीघ्र महल मे आया है।
चौंक उठा, सहसा, जब बैठा सेठ सुदर्शन पाया है ॥
क्या करता, कर्त्तव्यपाश मे फँसा हुआ था बेचारा।
राणी की आज्ञा से झटपट लौह निगड़ मे कस डारा ॥

राजा को भी खबर लगी तो दौड़ बाग से झट आया।
क्या कुछ कैसे हुआ ? धूर्त राणी ने यो सब बतलाया ॥

"प्राणनाथ ! क्या पूछो हो, अति भीषण अत्याचार हुआ।
शील-धर्म से च्युत करने के लिये दुष्ट तैयार हुआ ॥

मैंने जो धिक्कारा तो बस जोर जब्र करना चाहा।
अंग नोच कर वस्त्र फाड़ कर नग्न मुझे करना चाहा॥
मैंने आज बड़ी मुश्किल से अपनी लाज बचाई है।
बस प्रताप से नाथ! तुम्हारे, इज्जत रहने पाई है॥
कौन दुष्ट है, कौन नहीं है, कैसे सहसा आ धमका।
देखें शीघ्र वहाँ कमरे में, पता लगाएँ जालिम का॥
पूछताछ बिन ही पापी को सूली तुरत चढ़ा देना।
मुझ पर भारी जुल्म हुआ है, नाथ! अवश्य बदला लेना॥
प्राण दुष्ट के हाय हाय में तडफ तड़फ कर छूटेंगे।
मेरे पीड़ित अन्तस्तल के तभी फफोले फूटेंगे॥
अगर लाज से या दबाव से उसे अछूता छोड़ेंगे।
तो निश्चय ही मेरे से चिर प्रेम-शृङ्खला तोड़ेंगे॥
अपमानित होकर मैं कैसे जग मे मुँह दिखलाऊँगी?
याद रखें, फाँसी का फंदा लगा स्व प्राण गँवाऊँगी॥"
राजा ने यह सुना कि राणी को निज वक्ष लगा लीना।
मीठे स्नेह-भरे वचनों से कपट-कोप उपशम कीना॥
राजा शयन कक्ष में आया, सेठ सुदर्शन को देखा।
क्रोधान्ध हुआ, भडका तडका, सब लुप्त हुई सन्मति-रेखा॥
"रे जालिम! मक्कार!! कमीने!!! तेरी इतनी मक्कारी?
घुस आया बेखौफ महल में बदकारी दिल में धारी॥"
"सेनापति! ले चलो कचहरी, मै भी जल्दी आता हूँ।
इस उन्मादकता का इसको सारा मजा चखाता हूँ॥"
न्यायालय मे स्वर्णासन पर राजा बैठा गर्वित है।
और सामने सेठ सुदर्शन बंदी बना उपस्थित है॥

आस-पास मे मत्रीदल भी बैठा है कुछ चिन्ताग्रस्त।
दर्शक जनता की भी भारी भीड़ खड़ी है शका-त्रस्त ॥
राजा बोला "कहो सेठ जी ! यह क्या भूत सवार हुआ ?
कैसे भीरु हृदय मे तेरे पैदा यह कुविचार हुआ ?
तू तो पक्का दृढ धर्मी औ भक्तराज बन फिरता था।
अपने आगे सारे जग को पापी नीच समझता था ॥
राजहस के विमल वेश मे कौवा मक्कारी निकला।
सदाचार की बूँद न देखी घोर दुराचारी निकला ॥
क्या तू उस दिन इस बिरते पर मुझको ज्ञान सिखाता था।
धर्मगुरू बन शिक्षा के मिस ताने मुझे सुनाता था ॥
तेरा इतना दु साहस जो मेरी भी परवा न करी।
अन्त पुर मे घुस आया, खुद राणी से भी छेड़ करी ॥
मुझको क्या था पता दुष्ट तू इसी हेतु यहाँ रहता है।
आज्ञा लेकर धर्म क्रिया की यह छलछन्द विरचता है ॥
क्या जानें,किस किस नारी को तूने भ्रष्ट किया होगा ?
गुप्त रूप से दीन प्रजा पर क्या क्या जुल्म किया होगा ?
बतलादे सब सत्य सत्य जो कुछ भी घटना बीती है।
काम-मत्त हो कर के तूने क्यो कर करी फजीती है ॥"
सेठ सुदर्शन ने निज मन मे सोचा "समय भयकर है।
अपने मुख से भेद खोलना नही अभी श्रेयस्कर है ॥
व्यर्थ सफाई देने से कुछ होता नजर न आता है।
गूढ सत्य है, कौन मनुज विश्वास-भावना लाता है ?
निज सत्य प्रियता निज मुख से, कभी न शोभा देती है।
आता है जब वक्त स्वयं वह निज को चमका देती है ॥

राणी को मैंने वास्तव में मातृ-स्वरूप निहारा है।
और निजानन से माता कह सस्नेह पुकारा है ॥
जिसको माता कहा उसी के प्रति गन्दी वाणी बोलूं।
मारी जायेगी बेचारी गुप्त भेद यदि मैं खोलूं ॥"
बोला प्रगट सुमन्द हास्य हँस "राजन्! मैं क्या बतलाऊँ?
आप स्वयं हैं समझदार बस और कहो क्या समझाऊँ?
जैसी भी है, जो कुछ भी है, बात गुप्त ही रहने दें।
दण्ड दीजिये जो भी दिल में आये कसर न रहने दें ॥"

सुदर्शन की सिंह गर्जना।

[तर्ज—प्रजा की अरजी को सुनिये सरकार]

रहस्य-भरी घटना है, बताऊँ क्या सरकार! (ध्रुव)

कौन है कहता मुझको धर्मी,
मैं तो बड़ा कुकर्मी,
घोर कलिमल-भंडार!

अन्तर-शोधन मे मन लाया,
मुझ से बुरा न कोई पाया,
सभी खोजा संसार!

ऐसा तदपि न पतित हिया है,
जैसा तुमने समझ लिया है,
पाप का ही अवतार!

स्वर्ग से देवी भी चल आए,
तो भी चित्त न डिगने पाए,
शील अविचल अविकार!

सत्य का भेद स्वयं मैं खोलू,
होकर दीन हीन सा बोलू,
मुझे न यह स्वीकार!

सत्य दिनेश स्वयंचमकेगा,
अत मे तेज अटल दमकेगा,
झूठ का पड़दा फार!

प्राणो का मोह नही है,
मौत का कुछ भी खौफ नही है,
चढादे नख्ले-दार!

धर्म का रग रग जोश समाया,
मिटेगा हर्गिज नही मिटाया,
अमर है दृढ हुकार!

राजा भडका "अरे नीच! अब भी न गई यह मकारी।
अब भी मन मे उछल रही है शेखी-खोरी इत्यारी॥
सच्चा है तो क्यो न साफ सब भेद खोल बतलाता है?
टेढी ही बाते करता है सीधे मार्ग न आता है॥
अन्तकाल है निकट मृत्यु तव मस्तक पर मँडराती है।
बुद्धि भ्रष्ट होगई सर्वथा लज्जा तनिक न आती है॥
वीर सैनिको! ले जावो, झट शूली दो मरवा डालो।
और लाश को खड खडकर कुत्तो से चबवा डालो॥"
शूली का जो हुक्म सुना तो सन्नाटा सब ओर हुआ।
चित्रलिखित से हुए सभी जनशोक-सिन्धु झकझोर हुआ॥
सेठ सुदर्शन एक मात्र परिषद् मे बैठा हँसता था।
आँखो मे तेज चमकता था मुखविधु पर नूर बरसता था॥

"भूपति ! मुझ से अपराधी को यह क्या पामर दंड दिया।
उत्तेजित हो तुमने कुछ भी नही अक्ल से काम लिया॥
प्राणदंड की खातिर तो था मैं पहले से ही राजी।
और दीजिए दंड कठिन कुछ क्योंकि सेठ अति है पाजी॥
मृत्यु नहीं है, यह तो मुझ मे नूतन जीवन डालेगी।
पाप कालिमा जन्म-जन्म की मल-मल कर धो डालेगी॥
दुनिया कुछ भी समझे मुझको इससे क्या लेना देना।
नश्वर जग मे सार यही है अपना काम बना लेना॥
मैं क्या प्रभो ! मरूंगा, नैतिक मृत्यु तुम्हारी ही होगी।
हैवानी ताकत पर आखिर फतह हमारी ही होगी॥
देखूगा वह शूली कैसे मुझको मार गिराएगी।
काटेगी जड़ तन या कुछ मुझ पर भी असर जमाएगी॥
ले चलो दोस्तो ! शीघ्र वही उस स्वर्गारोहण के पथ पर।
पापभरी दुनियाँ से निकलू अमर शान्ति अवलंबन कर॥"
राजा उत्तर दे न सका कुछ हुआ खूब ही खिसियाना।
देख अटल गभीर सेठ को दिल मे अति अचरज माना॥
इसी बीच मे श्री मति सागर मंत्री सम्मुख आया है।
हाथ जोडकर विनय सहित नृप-चरणों शीश झुकाया है॥
"देव ! हृदय मे सोचे तो कुछ यह क्या जुल्म कमाते हैं ?
अंगराष्ट्र के प्राण सेठ को शूली आप चढाते हैं॥
मैंने परख लिया बातो से नही सुदर्शन दोषी है।
तेजस्वी, निर्भीक, साहसी होता कभी न दोषी है॥
सेठ सत्य ही कहता, है, यह भेद खोलना ठीक नहीं।
मेरे मत से भी यह घटना जा पहुँचेगी और कहीं॥

खानदान चंपा का नामी नष्ट-भ्रष्ट हो जाएगा ।
हा ! अबोध बालक, गृहणीयुत सब कुटुम्ब बिल्लाएगा ॥
प्राण दंड है घोर दंड,कुछ सोच-समझ कर काम करें।
क्या परिणाम आखिरी होगा कुछ तो दिल मे ध्यान धरें ॥"

राजा आँखे लाल लाल कर क्रोध-विकल होकर गरजा ।
"रहने दे बस शिक्षा अपनी मेरे आगे से हट जा ॥
न्याय निपुण बनता है खुद तो मुझको मूर्ख समझता है।
वक्त और बेवक्त धर्म का पुंच्छल पकड़े फिरता हैं ॥

तुझमे आदत बडी निकम्मी नही कभी भी टलता है ।
जब भी कुछ मै काम करू ,तब तू ही केवल अडता है ॥
राजसभा मे और बहुत से भी तो हैं ये अधिकारी ।
कोई भी कुछ नहीं बोलता तेरी है बक-बक जारी ॥

साफ जान पड़ता है तूने इससे रिश्वत खाई है ।
आखो के गुप्त इशारो से ही खूब रकम ठहराई है ॥
अगर और कुछ अनघड़ बाते मुझ से आगे बोलेगा ।
साफ-साफ कहता हूॅ नाहक अपना जीवन खो देगा ॥"

आस पास से 'पागल है पागल है' की ध्वनि गूज उठी ।
जी हुजूर अधिकारी दल की टोली हॅसकर गरज उठी ॥
"बेवकूफ है, जाहिल है, जो नरपति के मुँह लगता है ।
शेखी मे आ बिना बात ही राज-कार्य मे अड़ता है ॥

अपराधी को दडित करना राजा की दृढ नीती है ।
नही नजर आती हमको तो इसमे कुछ अनरीती है ॥
अगर सेठ ने इस घटना मे जरा नही झखमारी है ।
तो फिर क्या राणी जी की ही यह सारी मक्कारी है ॥

राम ! राम !! श्रीराणी जी को इस प्रकार लांछित करना ।
भरी सभा मे बोल रहा है राजा का कुछ भी डर ना ॥"
मंत्री मतिसागर बोला "क्यो नाहक शोर मचाते हो ।
व्यर्थ खुशामद कर राजा को पतन मार्ग लेजाते हो ॥"
"राजा जी ! इन खुदगर्जों की आप न बातों में आवे ।
ले डूबेंगे अगर हाथ की गुड्डी इन की बन जावें ॥
मेरा कुछ भी स्वार्थ नही हे सच्ची बातें कहता हूँ ।
रात्रि-दिवस इस राज-मुकट के हित में चिन्तित रहता हूँ ॥"

नग्न-सत्य

[तर्ज—महावीर स्वामी मैं क्या चाहता हूँ]

मुझे क्या तुम्हे दुख उठाना पडेगा,
अखिल गर्व गौरव गँवाना पडेगा ।
चढा है नशा, राज सत्ता का अब तो,
समय आयगा पछताना पड़ेगा ।
विजय न्याय की अन्त हो के रहेगी,
अन्यायी को निज मुख छिपाना पड़ेगा ।
खुशामद-परस्तो की बातो मे आकर,
अधम धार बेडा डुबाना पड़ेगा ।
चढाते जिसे आज शूली उसी के,
चरण मे यह मस्तक झुकाना पड़ेगा ।
सताना न अच्छा, कभी बेगुनाह का,
निराधार आँसू बहाना पड़ेगा ।
बुरा या भला दिल मे आये जो माने,
सचाई का रुख तो दिखाना पड़ेगा ।

राजा दधिवाहन बस इतना सुनते ही यम रूप हुआ।
छाया भय सब ओर सभा का रूप समग्र विरूप हुआ॥
"ओ चाडाल! नीच!! दुर्भागी!!! तू किस पर गरबाया है।
बक-बक करता ही जाता है निज पद भान भुलाया है॥
वीर सैनिको! इसको भी निज करणी का फल दिखलादो।
अन्धकार मय कारागृह मे डालो, बेड़ी जड़वादो॥"
आज्ञा पाते ही मत्री को सैनिक-दल ने पकड़ लिया।
राजाज्ञा-अनुसार शीघ्र ही कारागृह मे जकड़ दिया॥
मानव पर जब संकट की घन घोर घटा घिर आती है।
बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, निज हित की नही सुहाती है॥

९

पतिव्रता का आदर्श

दोहा

इधर सभा में हो रहा, अनघड़ अत्याचार;
उधर नगर में मच रहा, भारी हाहाकार।
छाया औदासीन्यतम, गली और बाजार,
शोक-सिन्धु में पूर्णत, डूबे सब नर नार।
पड़ा अचानक शीश पर, यह क्या वज्र कराल,
सेठ चढ़ाया जायगा, क्या शूली के भाल ?
"दया करें हम पर प्रभो, दीन-बन्धु भगवान;
सेठ हमारे को मिले, सादर जीवन-दान।"
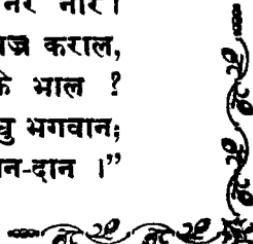
क्या बूढे, बालक, युवा सभी हुए बेभान,
गूंज उठे सब प्रार्थना-ध्वनि से धर्म स्थान।

सती शिरोमणि मनोरमा निज राजभवन मे बैठी थी ।
आस-पास मृदु सुख बिखरा था हर्ष-सिन्धु मे पैठी थी ।।
प्रेम-मग्न हो कर पति के चरणों मे ध्यान लगाया था ।
पौषध व्रत के विमल पारणे का सामान जुटाया था ।।

भाग्यवाद का चक्र शीघ्र ही फिरा रंग मे भंग हुआ ।
शूली की जो खबर लगी तो सभी रग बदरंग हुआ ।।
हा हाकार मचा घर-भर मे आँसू का दरियात्र बहा ।
नौकर चाकर परिजन सब मे नहीं शोक का पार रहा ।।

सब से बढकर श्री मनोरमा दु ख भार से विह्वल थी ।
चित्तवृत्ति अति व्यग्र हुई थी नही जरासी भी कल थी ।।
हंत ! त्यक्तजल मछली के मानिद अतीव तडफती थी ।
मूर्छित होकर बार बार बेहोश भूमि पर पडती थी ।।

"प्राणनाथ ! यह क्या सुनती हूँ, छाती मेरी फटती है ।
रोम-रोम मे दु ख वेदना प्रतिपल सर सर बढती है ।
शूली पर वह पुष्पलता सी देह चढाई जाएगी ।
हाय तुम्हारी चरण-सेविका कैसे फिर सुख पाएगी ।।
अमल चन्द्र हो नाथ ! आप, मै स्वच्छ चन्द्रिका प्यारी हूँ ।
पुष्प मनोहर आप और मैं प्रिय सुगन्ध सुख-कारी हूँ ।।
तुम हो सघन जलद, प्रियतम मै अन्तरग जल-धारा हूँ ।
तुम हो पुरुष और मै हरदम साथ लगी तन-छाया हूँ ।।
नाथ द्वैत यह सहन हो सकेगा न कदा-चित भी मुझ से ।
पति पत्नी की एकही गति है, अलग रहूँ कैसे तुम से ।।

छोड दुःख में मुझे अकेली आप स्वर्ग में जावोगे ?
तोड़ोगे क्या स्नेह-शृंखला, प्रेमी व्रत न निभावोगे ?
राजा ने यह कौन जन्म का हम से बदला लीना है।
हाय अचानक शूली का जो हुक्म भयंकर दीना है ॥
मेरे पति व्यभिचारी हों, यह हो ही कैसे सकता है ?
सदाचार मे उन जैसा दृढ और कौन हो सकता है ?
राजा ने बस द्वेष भाव से झूठा जाल बिछाया है।
शील मूर्ति मम पति के प्राणों पर यह वज्र गिराया है॥"

मनोरमा का विलाप।

[तर्ज—मैंने जालिम तेरा क्या बिगारा]

कैसा ज़ुल्म असीम गुजारा,
ऐसा जालिम तेरा क्या बिगारा, (ध्रुव)
सेठ धर्मी बडे ही गुणी हैं,
शील धर्म है प्राणो से प्यारा,
माता भगिनी उन्हे हे परस्त्री,
आता रंच न हृदय बिकारा !
क्या तू सचमुच शूली देगा,
अति निर्दय निपट हत्यारा,
कैसा पत्थर कलेजा है तेरा,
होता अणु ना दया का सचारा !
फूल-शैय्या पै सोने वाला,
कैसे झेलेगा शूली की धारा,
हाय ! छाती मे बिजली सी कडके,
पूरा चलता जिगर पै है आरा !

पूर्ण स्वर्ग-सुखी सा कुटुम्ब हा,
बर्बाद हुआ है बिचारा,
हाय घर का तो क्या सारे पुर का,
एक मात्र वही है सहारा!
दीन बालक हैं रो रो बिलखते,
आज हो गए ये भी आवारा,
कैसे जीवन अगाडी कटेगा,
छाया संकट का अँधियारा!
जालिम हमको सता के क्या खुश है,
होगा अन्त भला ना तुम्हारा,
राज्य वैभव ये सब क्षण-भर मे,
उठ जाएगा डेरा ये सारा!

रोते रोते रुकी मनोरम ध्यान और कुछ आया है।
राजा पर से द्वेष हटा, मन शान्ति-भाव लहराया है॥
"री मनोरमा तू तो बिल्कुल बुद्धिमूढ निकली पगली।
स्वार्थ-मोह ने तेरी उज्वल धर्म-बुद्धि सब ही ठग ली॥
राजा का क्या दोष व्यर्थ ही उसको लाछन देती है।
मात्र निमित्त बना है वह तो लक्ष्य न जड पर देती है॥
कौन किसी को दुःख देता है, सब निज करणी का फल है।
जो कुछ बाँधा कर्म शुभाशुभ होता तनिक न निष्फल है॥
मानव तो क्या चीज इन्द्र तक इससे छूट न सकते हैं।
कर्मों के आगे तो प्रभु अरिहंत तलक झुक सकते हैं॥
और कर्म! हाँ, वह भी तो है पूर्वजन्म का ही पुरुषार्थ।
तोडा जा सकता है, यदि हो यहाँ प्रतिद्वन्दी पुरुषार्थ॥

दैववाद के अटल भरोसे मात्र आलसी ही रहते ।
रोते रोते जन्म गँवाते, नित्य नए संकट सहते ॥
किन्तु वीर अपने पैरों हो खडे जगत कंपाते हैं ।
चाहे कैसा कठिन कार्य हो झट आसान बनाते हैं ॥
आत्मा की है प्रबल शक्ति वह चाहे जो कर सकती है ।
भाग्य चक्र मे मन चाहा सब उलट फेर कर सकती है ॥
रोने से क्या काम बनेगा ? अतः यत्न करना चहिए ।
आध्यात्मिक बल हेतु प्रभू की चरण-शरण गहना चहिए ॥
दीन बन्धु ही मुझ दुखिया का सारा दुखडा टालेंगे ।
प्राणनाथ को मृत्यु-राक्षसी से बस वही बचावेंगे ॥
शुद्ध श्वेत परिधान पहन पद्मासन सुदृढ लगाया है ।
अर्धोन्मीलित नयन बन्द कर श्रीजिन ध्यान लगाया है ॥
प्रेम-मग्न हो लगी प्रार्थना करने भक्ति समुद्र बहा ।
'अर्हन अर्हन' साँसो का स्वर मन्द मन्द झनकार रहा ॥

प्रार्थना

[तर्ज—निर्बल के प्राण पुकार रहे जगदीश हरे जगदीश हरे]

दासी का नाथ उद्धार करो, जगदीश प्रभो जगदीश प्रभो,
मै निराधार, साधार करो, जगदीश प्रभो जगदीश प्रभो !
आफ़त की बिजली कडकी है, छाती धडधड़ हा धड़की है,
दृढ साहस का विस्तार करो, जगदीश प्रभो जगदीश प्रभो !
बस मूर्च्छित सा मृत सा तन है निस्तेज हुआ न स्पन्दन है,
नव जीवन का संचार करो, जगदीश प्रभो जगदीश प्रभो !
मुझ निर्बल के बल तुम ही हो, मुझ निर्धन के धन तुमही हो,
मुझ अबला का उद्धार करो, जगदीश प्रभो जगदीश प्रभो !

हा नाथ भँवर मे नैय्या है तुम बिन अब कौन खिवैया है,
देरी न करो झट पार करो, जगदीश प्रभो जगदीश प्रभो!
क्षण क्षण मे दबती जाती हूँ, अणु भी न उभरने पाती हूँ,
पापों का हल्का भार करो, जगदीश प्रभो जगदीश प्रभो!
पति शूली चढाये जाते है, निष्कारण मारे जाते हैं,
सकट मे है कुछ सार करो, जगदीश प्रभो जगदीश प्रभो!
सीता का सकट टारा था, द्रौपदी का पट विस्तारा था,
मुझपर भी क्योन विचार करो, जगदीश प्रभो जगदीश प्रभो!
अति विकट पहेली उलझी है, हा नही किसी से सुलझी है,
शुभसत्य की जय-जयकार करो, जगदीश प्रभो जगदीश प्रभो!

देव-प्रार्थना करने से कुछ मन-दुर्बलता दूर हुई।
कातर अति अबला की छाती साहस से भर पूर हुई॥
"बाल्यकाल से पूर्ण अखंडित धर्म पतिव्रत पाला है।
मैने अब तक नही लगाया तिलभर धब्बा काला है॥
क्यो न सत्य फल देगा मेरा, देगा, देगा, फिर देगा।
प्राणेश्वर को हँसी-खुशी से झट बेदाग छुड़ा लेगा॥
अब तो पति के हाथो से ही सुखद अन्न जल पाऊँगी।
वर्ना मै इस आसन पर ही घुल-घुल कर मर जाऊँगी॥"
सागारी सथारा अति ही दृढता-पूर्वक ग्रहण किया।
एक-मात्र जिनराज-भजन में अविचल निज मन जोड़दिया॥
देखा पाठक पतिव्रता का रूपक ऐसा होता है।
आदर्श वीर सतिया का पावन अखिलपाप मल धोता है॥
सती साध्वी वही जगत मे ललनाएँ यश पाती हैं।
दु खकाल मे भी जो अपने पति से प्रेम निभाती है॥

सुख दुख में सदा एकसाँ पर-छाईं ज्यों रहती हैं।
अर्धाङ्गी होने का सच्चा गौरव वह ही लहती है॥
पतिव्रता के लिए स्वपति ही परम पूज्य परमेश्वर है।
हृदय-भवन का एक-मात्र वह अधिकारी हृदयेश्वर है॥
चाहे पति हो रोगी, क्रोधी, दीन, दुखी, कुविलासी हो।
प्रेम-भाव से पतिव्रता तो नित चरणो की दासी हो॥
भारत की ये गृह देवी ही विश्व-वन्द्य गुण-गरिमा हैं।
शक्ति-शालिनी दुर्गा हैं बस आर्य जाति की महिमा हैं॥
जो कुछभी जब मन मे आया अनायास कर दिखलाया।
देवराज का रत्न-मुकुट भी निज चरणों मे झुकवाया॥

१०

पौरजनों का प्रेम

दोहा

सेठानी की भी ख़बर, फैली नगर मँझार,
दुख में दुख उमड़ा मचा दुगुना हाहाकार।
कपिल पुरोहित को हुआ, सुनकर हाल बेहाल,
आँखो आगे नाचने लगा शोक दे ताल।
चंपापुर के प्रतिष्ठित पच लिए सब लार,
सेठ छुड़ाने के लिए, पहुँचे राज - द्वार।

राजा जी को बडे अदब से किया सभी ने अभिवादन।
अर्ज मिन्नतें करते हैं अति नम्रभाव से मन-भावन॥
"देव! आपने यह क्या सोचा व्यर्थ उठायो क्या रगड़ा?
सेठ सुदर्शन के पीछे निर्मूल लगाया क्या झगडा?
झूठा, बिल्कुल झूठा सब, गंदा इलज़ाम लगाया है।
धोखा देकर किसी दुष्ट ने राजन्! तुम्हें बहकाया है॥
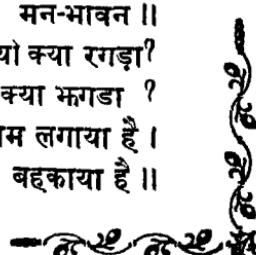
धर्म परायण सेठ बडा है, कैसे सत खो सकता है ?
राज हंस से कैसे वायस-कार्य नीच हो सकता है ?
त्राहि त्राहि मच रही नगर में अति ही भीषण कलकल है।
क्या बाजारों गलियों में सर्वत्र यही इक हलचल है ॥
घर का घर बर्बाद हुआ क्या तुम्हे और कुछ खबर नहीं ?
सेठानी ने सथारे की घोर प्रतिज्ञा अटल गही ॥
दयापात्र है दीन पुत्र, कुछ उन पर तो करुणा कीजे।
एकमात्र अवलम्ब सेठ के जीवन की भिक्षा दीजे ॥"
राजा उद्धतता से बोला, "अरे मूर्ख क्या कहते हो ?
न्याय मार्ग का तुम्हे पता क्या, दूकानों पर रहते हो ॥
अत्याचारी पतिताचारी सेठ दड के काबिल है।
धर्मी क्या, शैतान बडा है, धूर्तराज है, जाहिल है ॥"

प्रजा का उत्तर।

[तर्ज—मजहब नही सिखाता आपस में बैर करना]

राजन् ! बताएँ कैसा गुणवान है सुदर्शन,
धर्मज्ञ सज्जनों का अभिमान है सुदर्शन !
सौ कोस दूर रहता जग की बुराइयों से,
जग मे पवित्रता का उपमान है सुदर्शन !
दृढ सत्य का पुजारी, छल छन्द है न कुछ भी,
सादर सदाचरण पर बलिदान है सुदर्शन !
पूछो नगर नगर मे सब ठौर इस की बाबत,
शीलव्रती जगत मे असमान है सुदर्शन !
मर्मज्ञ शास्त्र का है विद्वान है चतुर है,
विज्ञान बाँसुरी की मृदु तान है सुदर्शन !

दीनो का है सहारा, बेली है दुखितो का,
पीडित अनाथ जन का प्रिय प्रान है सुदर्शन!
मृत राष्ट्र मे समय पर यह फूकता है जीवन,
कर्तव्य वीर दल का कप्तान है सुदर्शन!
चंपा की शान है और चंपा की है जरूरत,
भूपेन्द्र! आप का भी सम्मान है सुदर्शन!
स्वर्गीय देवता है भगवान है हमारा,
नजरो मे आपकी जो शैतान है सुदर्शन!
झेलेग अब कहाँ तक अन्याय इस कदर हम,
गूगी प्रजा की सब कुछ जी जान है सुदर्शन!

राजा बोला "बदमाशो! बस अधिक न अब बकवास करो।
क्यो मेरे हाथो से अपना नाहक सत्यानाश करो ॥
कामी लपट को तो करके स्तुति आकाश चढाते हो।
और मुझे तुम बातो ही बातो मे अधम बताते हो ॥
मूर्ख तुम्ही लोगो ने इस का साहस अधिक बढाया है।
राजमहल मे भी जा पहुँचा, जरा नही सकुचाया है ॥
छोडूंगा हर्गिज न दुष्ट को, शूली पर लटकाऊँगा।
अगर शरारत की तो तुमको भी वह राह दिखाऊँगा ॥"
प्राणो के भय से बेचारे सभी लोग खामोश हुए।
सूझा कुछ भी नही मार्ग, मन मार सभी बदहोश हुए ॥"

११

शूली से सिंहासन

दोहा

सत्ता के अभिमान का होता जब अतिरेक,
हो जाते है नष्ट सब बुद्धि, विचार विवेक।
राजा के मस्तिष्क में गूंज रहा है गर्व,
पर होना है क्या, पढ़ें आगे चल कर सर्व।
राजा तो क्या ईश भी अगर रुष्ट हो जाय,
धर्मवीर नर पर नहीं कुछ भी पार बसाय।

पौर जनों को धमकाकर नरपाल सेठ की ओर हुआ।
आँखें अन्धी बनी क्रोध से गर्व ज्वर का जोर हुआ॥
कहा सेठ से "मरने को अब हो जाओ जल्दी तैय्यार।
मैं क्या मरवाता हूँ तुझ को, मरवाता है पापाचार॥
हाँ, परन्तु इक राज धर्म है, वह भी तो करना होगा।

प्राणदण्ड के अपराधी का मनोऽभिलषित करना होगा ॥
प्राणदान के बिना और जो कुछ भी चाहो तुम माँगो ।
ग्राम, नगर, धन, भोजन, अभिनव मन चाहे वह ही माँगो ॥"
हँस कर बोला वीर सुदर्शन-"नहीं तमन्ना कुछ भी है ।
क्या माँगूं जब मनो-वासना पूर्ण सभी पहले ही हैं ॥
अगर आप कुछ देना चाहें तो प्रभु केवल यह दीजे ।
मांगे मेरी जो कुछ भी है, नाथ ! पूर्ण सब कुछ कीजे ॥"

सुदर्शन क्या मांगता है ?

[तर्ज—सीयाराम अयोध्या बुलालो मुझे]

मांगे मेरी न दिल से भुलाना प्रभो !
पूरी करना, ये निज प्रण निभाना प्रभो ! (ध्रुव)

राज राजेश्वर पिता है प्रिय प्रजा सतान है,
हर तरह आराम के देने से रहती शान है,
अत्याचारी न चक्र चलाना प्रभो !

घोर दुख सहती प्रजा है खोलती न जबान है,
आपके हाथों मे ही उसकी हमेशा जान है,
दु:ख सहके भी धीरज बँधाना प्रभो !

देश मे जो भी कहीं रोगी दुखी असहाय हों,
आपकी सेवा के द्वारा वे सभी ससहाय हो,
खुल्ले हाथों खजाना लुटाना प्रभो !

भूप और पतिताचरण का रात दिन सा वैर है,
दुर्व्यसन आखेट आदिक हो, वहाँ क्या खैर है,
सीधा सादा सा जीवन बनाना प्रभो !

न्याय मे अपने बिगाने का न होता भेद है,
एकसाँ दंडित सुखी करना, न करना खेद है;
सच्चे ईश्वर का अंश कहाना प्रभो !

राजपद की श्रेष्ठता, ले डूबते हैं जी हुजूर,
कान का कच्चा बना देते हैं माया के मजूर,
ऐसी बातो मे हर्गिज न आना प्रभो !

दो घडी प्रभु भक्ति भी करना कि झझट त्यागना,
'कर सकू कर्तव्य पालन', हर सुबह यह मांगना,
सोते मानस को नित्य जगाना प्रभो !

मन्त्रमुग्ध सी विस्मित अति ही सभा हुई सुनकर बाणी।
अन्तस्तल मे धन्य धन्य की उठी मधुर झकृत बाणी ॥
लेकिन,यह अमृत राजा को पूर्ण हलाहल रूप हुआ।
समझा मुझे चिढ़ाता है, इस कारण राक्षस रूप हुआ ॥
द्वेष भाव जब बढ जाता है तब विवेक कब रहता है ?
शुद्ध हृदय से कहा हुआ भी वचन अग्नि सम दहता है ॥
राजा जल्लादो से कहने लगा "इसे बस ले जावो।
जाहिल है,क्या मागेगा,झट शूली का मुख दिखलावो ॥
बुरी तरह से करो बिडबित नगर घुमाकर ले जाना।
जैसे भी हो धिक्कृत करना,नही जरा भी सकुचाना ॥
राजा का पा हुक्म करारा, काला गधा मँगाया है।
शिर मुँडन और काला मुँह कर उस पर गया चढाया है ॥
गले सड़े टूटे जूतों का हार गले में डाला है।
आया जो दिल मे कर डाला, पूरा जहर निकाला है ॥

जल्लादो ने पकड रखा है, फूटा ढपड़ा बजता है।
आस पास मे नगी तलवारों का पहरा चलता है॥
मध्य चौक मे धर्म वीर की इधर सवारी आई है।
उधर विकल जनता की भी अति भीड चतुर्दिश छाई है॥
पौर जनो को सबोधित कर कहे सेठ ने वचन अनूप।
महा पुरुष के पावन मन का होता है, ऐसा शुभरूप॥

आदर्श-सन्देश

[तर्ज—रग लाती है हिना पत्थर पै पिस जाने के बाद]

खुश रहो प्रिय बन्धुओ! मैं तो सफर करता हूँ आज,
शीश अपना सत्य भगवन् की नज़र करता हूँ आज!
आप लोगो का शुरू से क्रीत दास बना रहा,
याद रखना, भूल मत जाना, ख़बर करता हूँ आज!
गलतियाँ जो भी हुई हो कीजिये अणु अणु क्षमा,
भूत की भूले सभी कुछ दर गुजर करता हूँ आज!
प्रेम से रहना, न करना भूल कर झगड़ा फिसाद,
पौर धर्म-हितार्थ शिक्षा स्नेह धर करता हूँ आज!

अन्तिम कडियाँ सुनते सुनते बहा स्नेह का स्रोत विमल।
हाहाकार मचा चहुँ दिश मे गूजा रोदन से नभ-तल॥
देख सेठ की विकट दुर्दशा सिसक सिसक सब रोते थे।
आँखो से अविराम आँसुओ के हाँ बहते सोते थे॥
बोले "ठहरो सेठ हमे तुम कहाँ छोड कर जाते हो?
सदा काल को हमे सर्वथा क्यो असहाय बनाते हो?
पावेगे जब कष्ट, भला फिर किसे गुहार सुनावेगे?

कहाँ प्रेम से भरी सान्त्वनामय सहायता पावेगे ?
आज हमारी चपा नगरी हा विधवा बन जाएगी।
सरक्षक के बिना नित्य नव कष्ट भयंकर पावेगी।।
राजा का अन्याय निरन्तर भीषण बढता जाता है।
क्या करे और क्या नही करे,कुछ भी न समझ मे आता है।।
देता है हा हत आप से सज्जन को भी शूली दड।
राजगर्व मे छका हुआ है, बना हुआ है अति उद्दड।।

अन्तस्तल मे धधक रहे हैं, भीषण प्रतिहिसा के भाव।
राज दड से किन्तु त्रस्त है नही मुखोद्घाटन की ताब।।"
धीर वीर था एक नागरिक गर्ज उठा कर दृढ हुंकार।
देख सका वह नही पाशविक निर्दयतामय अत्याचार।।
"दोषी था तो सेठ क्यो न न्यायालय के सम्मुख लाया ?
क्यो न दोष पूरा साबित कर जनसमूह को दिखलाया ?
केवल रानी के कहने पर कैसे शूली देता है ?
है यह सब षडयंत्र, क्योंकि यह दुखी जनो का नेता है।
अरे कायरो! क्या रोते हो, तन मन अबलाओ सा धार।
मर्द बने हो किस बिरते पर,सौ सौ बार तुम्हे धिक्कार।।
चपापुर का प्राण तुम्हारे सम्मुख मारा जाता है।
पत्थर से तुम खडे, न कुछ भी किया कराया जाता है।।
सदाचार साकार सुदर्शन, उसकी यह दुरवस्था है।
कहो,तुम्हारे फिर जीवन की कितनी चिर सदवस्था है ?
होता है चहुँ ओर खुदी का तांडव,न्याय न मिलता है।
पशुओ से भी अधम आज हम सबका जीवन चलता है।।
अंग राष्ट्र की कीर्ति एक दिन फैली थी जगती तल मे।
आज कहीं भी पूछ नहीं है मरा चाहता है पल मे।।

भेड बकरियों जैसा कब तक जीवन भार निभावोगे ?
गूंगे बनकर 'म्या म्यां' करते कब तक शीश कटावोगे ॥
उठो गर्ज कर, बनो न दब्बू, सत्ता का गढ दहलादो ।
जनता की भी कुछ ताकत है, मत्त भूप को दिखलादो ॥
जीवन का क्या मोह, न्याय पर हँसते हँसते मर जावो ।
अमर शहीदो मे स्वर्णाक्षर से निज नाम लिखा जावो ॥"

ओजस्वी वक्तव्य सुना तो बिजली नस नस दौड गई ।
जनता मे विप्लव की भीषण आग सर्वत फैल गई ॥
"पकडो, मारो, इन दुष्टो की हड्डी हड्डी चूर्ण करो ।
श्रेष्ठी को लो छुडा अभी, जो करना है वह तूर्ण करो ॥"

युवको का दल गर्जन करता सैनिक दल की ओर बढ़ा ।
रोम रोम मे बडे वेग से प्रतिहिंसा का नशा चढा ॥
सेठ सुदर्शन ने देखा जो रक्त पात का विकट समय ।
बोले शान्ति स्थापनाकारी वाणी स्नेह सुधारस मय ॥

"ठहरो ठहरो, क्या करते हो ? होते हो क्यो उत्तेजित ?
निरपराध हैं बधिक सिपाही, करते हो क्यो उत्पीड़ित ?
स्वार्थ विवश है निद्य पेट के लिए सभी कुछ करते हैं ।
अन्तर मे सब समझ रहे है, किन्तु भूप से डरते है ॥
आज्ञा पालन ही, सेवक का धर्म, शास्त्र है बतलाते ।
क्रोधभाव अतएव श्रेष्ठ जन कभी न सेवक पर लाते ॥
पूर्ण शान्ति रक्खो न कभी भी नाम मारने का लोना ।
बन्धु-रक्त से रंजित कर अपवित्र न बाहु बना लेना ॥
राजा क्या शूली देता है? यह सब कलिमल अपना है ।
स्वयं हेतु हूँ निज सुख दुख का व्यर्थ अन्य का सपना है ॥

मेरा अपराधी इस जगती तल पर कोई नही कहीं।
प्रतिहिंसा का मेरे अन्तस्तल मे अणु भी भाव नही॥
राजा भ्रम भूला है, कुछ भी नही सत्य का पता उसे।
दया करें भगवान, नही हो कष्ट-प्रद यह खता उसे॥
रक्तपात करना पशुता है, मात्र भीरुता है मन की।
सज्जनता से अरि को वश करना, है शोभा सज्जन की॥

भौतिक बल अन्यत्र कही भी नही शक्ति से झुकता है।
आध्यात्मिक बल के ही सम्मुख आकर आखिर थकता है॥
राजा तो क्या अखिलविश्व भी नतमस्तक हो जाता है।
आध्यात्मिकता का जब सच्चा भाव हृदय मे आता है॥

गर्ज रहा है अब असत्य, पर, अन्त सत्य ही चमकेगा।
तम का पर्दा फाड़ पूर्ण-आलोक प्रभाकर दमकेगा॥

भौतिक बल ही प्रबल शत्रु है बसा तुम्हारे अन्तर मे।
हो सकते हो इसे जीत कर विजयी तुम संसृति भर में॥

बचो, क्रोध कादर्य अनय दुःसाहस की दुर्बलता से।
बनो समर्थ अजेय अहिंसक दृढ अध्यात्म-सबलता से॥

मुझ पर है यदि प्रेम अटल तो मेरा ही पथ अपनाओ।
बदले का संकल्प न रक्खो, दुख न किसी को पहुँचाओ॥

अपने प्रिय श्रेष्ठी की वाणी सुनकर जनता शांत हुई।
'धन्य अलौकिक शाति क्षमा' के रव की नभ मे गूंज हुई॥

सत्पुरुषो के विमल हृदय की जग मे कही न समता है।
प्राणशत्रु पर भी करुणा रखने की कैसी क्षमता है॥
जल्लादों ने हाँका गर्दभ, चली सवारी आगे को।
छोड़ चले हा हत सेठ जी अपने नगर अभागे को॥

जग भक्षक श्मशान-भूमि मे घटा शोक की छाई है।
चारों ओर मृत्यु की छाया कण-कण मध्य समाई है ॥
प्राणनाशिनी लोह निर्मिता शूली झल-झल करती है।
सेठ पास मे आये तो जनता अति कल कल करती है॥
देख प्रजा-वैकल्य सेठ जी मन्द हास्य हँस कर बोले।
वाम-हस्त से पकड़ा शूली-दड अभय हृत्पट खोले ॥

सुदर्शन का आदर्श वक्तव्य।

[तर्ज—कौन कहता है कि ज़ालिम को सजा मिलती नहीं]

बन्धुओ ! शूली नहीं यह स्वर्ग का शुभ द्वार है,
सत्य की पूजा का अभिनव चित्रपट तैयार है !
खौफ कुछ भी है नहीं मेरे हृदय मे मौत का,
हर्ष का उमडा है चहुँ दिश पूर्ण पारावार है।
मैं मरूंगा क्या, मेरी खुद मौत ही मर जायगी,
मोक्ष मे अमरत्व का मेरे लिए संसार है।
मौत ऐसी भूमितल पर मिलती है सौभाग्य से,
सादर स्वागत हजारों, लाखो, क्रोडो बार है।
फूल सी कोमल, सुतीक्ष्ण नौक लगती है मुझे,
स्वर्ण-सिहासन पै चढन भी अजीब बहार है।
आप क्यो रोये, बजाये तालियाँ, खुशियाँ करे,
आपका भाई शहीदो मे हुआ शुम्मार है।
धर्म पर मरना न आया, काम भोगो पर मरा,
मानवी तन पाके भी संसार मे भूभार है।
सत्य खुल कर ही रहेगा दूर होगा सब कलंक,
देखना कुछ क्षण मे होगा भूप खुद बेदार है।

आप लोगों को मैं अन्तिम भेट मे क्या आज दूं,
श्रेष्ठ यह आदर्श ही मम प्रेम का उपहार है।

धर्म-वीर का धर्म-रहस्य से पूरित था वक्तव्य महान।
झलक रही थी निर्भयता, था भय का कहीं न नामनिशान॥
जीवन पाने पर तो सारी दुनिया हड हड हँसती है।
वन्दनीय है वह जो मरने पर भी रखता मस्ती है॥
आँधी के चक्कर मे टीबे रेती के उड़ जाते हैं।
लेकिन, दुर्गम उन्नत पर्वत कभी न हिलने पाते हैं॥
जनता की आँखो के आगे मौत नाचती फिरती थी।
किन्तु सुदर्शन के मुख पर तो अविचल शान्ति उमडती थी॥
जल्लादो ने शूली की इस ओर योजना शुरू करी।
और उधर कर जोड़ सेठ ने देव-वन्दना शुरू करी॥

वन्दना

[तर्ज—हरि ओं, हरि ओं, हरि ओ, हरि ओ]

अर्हम्, अर्हम्, अर्हम्, अर्हम्!
अर्हम, अर्हम्, अर्हम्, अर्हम्!
पावन परम-पुनीत अनन्त अचल,
होता कलिमल का न जरा भी दखल,
ज्ञान-ज्योति-प्रकाशित त्रिलोकी सकल,
मनसा वचसा अलक्ष्य स्वरूप विमल।
अर्हम्, अर्हम्, अर्हम, अर्हम्!
प्रेमी भक्तो का प्यारा तू भगवान है,
ज्योति स्तभ महान प्रकाशमान है,

सारे विश्व का ज्ञाता अनँत ज्ञान है,
सब से बढ़ कर निराली तेरी शान है।
अर्हम्, अर्हम्, अर्हम्, अर्हम्!
पाया भेद तेरा कि बेडा पार है,
अक्षय अतुल सुखों का तू भंडार है,
तेरे भक्तों का नित्य ही जयकार है,
होती अणु भी कहीं भी नहीं हार है।
अर्हम्, अर्हम्, अर्हम्, अर्हम्!
भगवन् भक्त-हृदय की यह है भावना,
सबजन सुख से करें नित्य धर्म-साधना,
पापाचरणों की दिल में न हो कामना,
सारा जगत सुखी हो न हो यातना।
अर्हम्, अर्हम्, अर्हम्, अर्हम्!
दया मूर्ति! मैं दर पै तुम्हारे खडा,
भव-व्याधि-के व्रण से हृदय है सडा,
सभी भाँति विमूर्च्छित मुमूर्षु, पडा,
कीजे करुणा, समय है अतीव कड़ा!
अर्हम्, अर्हम्, अर्हम्, अर्हम्!

मन्त्र-मुग्ध थी सारी जनता भक्ति घटा घहराई थी।
पाप-ताप-मूर्च्छित हृदयों में शान्ति सुधा लहराई थी॥
सागारी संथारा करके किया पाप का ताप शमन।
द्वेष भाव रक्खा न किसी पर उमडा मैत्री का शुभ घन॥
जय-जय ध्वनि के साथ सेठ शूली पर चढते जाते थे।
मन्त्र राज नव कार उच्चतम ध्वनि से पढ़ते जाते थे॥

प्राण हारिणी तीक्ष्ण अणी का भाग भयकर आया है ।
पल मे नक्सा बदला अभिनव दृश्य दृष्टि मे आया है ॥
स्वप्न-लोक की भाँति, लौह शूली का दृश्य विलुप्त हुआ ।
स्वर्ण-खभ पर रत्न कान्तिमय स्वर्णासन उद्भूत हुआ ॥
सेठ सुदर्शन बैठे उस पर शोभा अभिनव पाते है ।
श्रीमुख-शशि पर अटल शान्ति है, मन्द-मन्द मुसकाते हैं ॥
मन्द सुगन्ध समीर चली, नवपुष्प-रासि की वृष्टि हुई ।
पलक मारते मरघट मे शुभ स्वर्ग लोक सी सृष्टि हुई ॥
विस्तृत नभ मे सुरयानो का जमघट खूब सुहाया है ।
देववृन्द के साथ इन्द्र ने चरणो शीश झुकाया है ॥
जहाँ तहाँ बस सुर ललनाएँ दुन्दुभि वाद्य बजाती है ।
जय जय के गभीर घोष से गगनांगण गुजाती है ॥
हर्षमत्त जनवृन्द, सिन्धु की भाँति हिलोरे लेता है ।
धन्य धन्य एवँ जय जय से गगन उठाए लेता है ॥
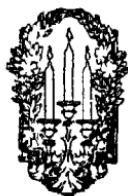
१२

आदर्श उदारता

पुर में प्रवेश

दोहा

अखिल विश्व में धर्म का तेज प्रताप अखंड,
विद्रोही भी चरण में गिरते त्याग घमंड।

न्यायालय मे खबर लगी तो भूपति भी अति घबराया।
नगे शिर नगे पैरो ही ज्यो था त्यो दौडा आया॥
हाथ जोड कर 'क्षमा क्षमा' करता चरणो मे आन पडा।
भयकातर आँखो से झर झर अश्रु-मेघ भी बरस पडा॥
पशु बल कितना ही भीषण हो किन्तु अन्त मे होती हार।
प्राण शत्रु भी चरणो मे गिर आखिर बोलें जयजयकार॥
अटल सत्य का पक्ष चाहिये, फिर दुनियाँ मे क्या भय है?
मानव तो क्या, अखिल विश्व पर विजय अन्त मे निश्चय है॥
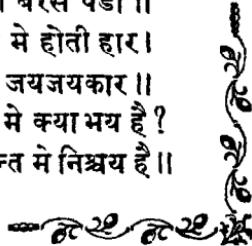
स्वर्णासन पर बैठ गर्व से भूप पूर्व क्या था बकता ?
आज देखिए, वही नम्र हो चरण पकड़ कर क्या कहता ?
"बुद्धि भ्रष्ट होगई सर्वथा, नहीं जरा सोचा समझा।
अन्दर बाहिर श्वेत हस को मैं काला कौआ समझा ॥
भूल गया सब न्याय-व्यवस्था, पागलपन अति ही छाया।
पापिन ने मँझधार डुबोया, जाल बिछाया, बहकाया ॥
पूछताछ कुछ भी न करी, बस झट शूली का हुक्म दिया।
धर्ममूर्ति श्रीमान् आपका अति भीषण अपमान किया ॥
अपराधी हूँ बेशक भारी, किन्तु दास पर क्षमा करें।
प्राणदान हैं हाथ आपके दयासिन्धु ! बस दया करें ॥"
पास खडा था इन्द्र, कोप से पूरित सारा गात हुआ।
वज्र घुमाकर बोला "क्यो अब मृत्यु-त्रस्त बदजात हुआ ॥
राजा होकर ऐसा भारी जुल्म प्रजा पर करता है !
नारी की बातो पर चल कर दुष्कृत सागर भरता है ॥
सत्यमूर्ति श्रीमान् सुदर्शन को भी शूली लटकाया।
पत्थर सा जड बना, जरा भी नहीं हृदय मे भय खाया ॥
सावधान हो दुष्ट, पाप का फल अब शीघ्र चखाता हूँ।
मार वज्र तन चूर्ण बना कर, नामो निशां मिटाता हूँ ॥"
आँखे पथरा गईं भूप की, कम्पित वपु बेहोश हुआ।
कौन मृत्यु के सम्मुख आकर तुच्छ कीट बाहोश हुआ ॥
"देवराज ! यह क्या करते हो, किस पर वज्र चलाते हो ?
पामर दीन कीट का नाहक क्यो तनु-रक्त बहाते हो ॥
अज्ञानी है, भ्रम भूला है, दयापात्र है अतः सदा।
ज्ञानी जन भ्रम भूलो पर यो क्रोध-भाव लाते न कदा ॥
और दूसरे अपराधी है तो भी मेरा अपना है।
आप दड दे, यह तो बिल्कुल व्यर्थ पच खुद बनना है ॥

उपकारी पर उपकारी तो सारा ही जग बनता है।
किन्तु सुदर्शन अपकारी पर भी उपकारी बनता है॥"
"पूर्ण प्रेम के साथ क्षमा है, द्वेष न कुछ भी लाऊँगा।
राजन्! बन्धुभाव से वह पहले सा स्नेह निभाऊँगा॥"

दोहा

धन्य धन्य के घोष से, गूँजा सभी प्रदेश;
भक्तिमग्न जन वृन्द में, था अति हर्षावेश।
राजा ने विनयावनत, होकर की अरदास,
'पुर में शीघ्र पधारिये, हरिए शोकायास।'

बोले सेठ "मुझे पुर मे जाने मे कुछ इन्कार नहीं।
जननी जन्मभूमि मे बढकर अन्य जगत मे सार नहीं॥
किन्तु आपको पहिले मेरा एक कार्य करना होगा।
अभयदान देकर राणी का मरण-त्रास हरना होगा॥
मेरे कारण से कोई भी जीवात्मा पीडा पाए।
देख न सकता हूँ उसमे भी यदि अबला मारी जाए॥"
राजा ने कर जोड सेठ से कहा "आप क्या करते है?
कौन शिष्ट, आचार भ्रष्ट कुटिला की रक्षा करते है?
पापाचारी का न क्षणिक भी जग मे जीवन अच्छा है।
पापाचार बढेगा अति ही, अस्तु मरण ही अच्छा है॥
अगर दड दे दुष्टा को दुष्फल न चखाया जाएगा।
तो फिर जग मे सती धर्म का ध्वज कैसे फहराएगा॥
और हुक्म कुछ करिएगा, यह तो बस कृपया रहने दें।
दोष आपको क्या इसमे, मुझको नृप-शासन करने दें॥"
बोले श्रेष्ठी "प्राण-दंड से क्षमा कहीं श्रेयस्कर है।
राजन्! प्राण-दड का देना अति ही घोर भयकर है॥

दोष-नाश के लिए अगर उस दोषी को ही मार दिया।
तो यों समझो रोग नाश के लिए रुग्ण ही नष्ट किया ॥
प्राणदंड से भौतिक तन का मात्र रक्त बह सकता है।
क्षमा दंड से ही पापी का पाप मैल धुल सकता है ॥
एक दुष्ट यदि सज्जन बन कर जीवित जग में रह पाए।
तो अपने से लाखों को सत्पथ का पथिक बना जाए ॥"
आखिरकार सेठ का आग्रह राजा ने स्वीकार किया।
धन्य दयासागर का सब जनता ने जय जयकार किया ॥
मन्त्रीश्वर की याद हुई, झट कारागृह से बुलवाए।
देखा जो अति दिव्य अलौकिक दृश्य अमित विस्मय पाए ॥
चमक उठा मुखचन्द्र बिम्ब कुछ नहीं हर्ष का पार रहा।
रोम रोम मे अटल सत्य की श्रद्धा का सुप्रवाह बहा ॥
हर्षमत्त हो लगे बोलने जय पर जय के घोष महान।
लाखों स्वर से प्रतिध्वनित हो गूंज उठा ब्रह्माण्ड वितान ॥

मन्त्री का श्रद्धा भरा वक्तव्य

सत्य की जग मे एक विजय है,
तम का पर्दा फटा सत्य का होगया सूर्य उदय है!

सत्य-कवच है जिसने पहना वह सर्वत्र अभय है,
अत्याचारी दंभ-चक्र की होती अन्त प्रलय है,
सत्य की जग मे एक विजय है!
सत्य रंग मे रँगा हुआ यदि दृढ विश्वासी हृदय है,
और चाहिए फिर क्या जग में क्षेम कुशल अक्षय है,
सत्य की जग मे एक विजय है!

बना शीघ्र शूली से कैसा आसन कांचन मय है,
सत्य-प्रताप असंभव संभव होता, अति विस्मय है,
सत्य की जग में एक विजय है !
धन्य सुदर्शन ! सत्य आपका अचल चमत्कृति-मय है,
त्याग और वैराग्य भाव का उमडा सिन्धु सत्य है,
सत्य की जग में एक विजय है !
सदाचार की जीवित प्रतिमा यह प्रत्यक्ष विषय है,
चंपा का गुण गौरव फैला त्रिभुवन में अतिशय है,
सत्य की जग में एक विजय है !

जयकारों के बीच सचिव का जब वक्तव्य समाप्त हुआ।
क्षमायाचना करने का तब नृप को अवसर प्राप्त हुआ॥
हाथ जोड कर माफी मांगी, अपने निंद्य दुराग्रह की।
क्षमादान कर मंत्री ने भी रक्खी टेक सदाग्रह की॥
श्रेष्ठी की आज्ञा से राजा मंत्री दोनों गले लगे।
स्नेह-क्षीर सागर लहराया, द्वेष भाव सब दूर भगे॥
स्वर्ण सिंहासन सहित पट्ट हस्ती पर सेठ सवार हुए।
पीछे उमड चला जन सागर सादर जय जय कार हुए॥
नाना विध शस्त्रों से सज्जित सेना आगे चलती है।
बजते हैं बहु वाद्य, मधुर तम, पुष्प सुराशि उछलती है॥
राजा स्वयं सेठ के मस्तक पर निज छत्र लगाता है।
और सुबुद्धि मंत्रीश्वर हर्षित होकर चँवर ढुराता है॥
पाठक वृन्द ! हर्ष का सागर इधर उमडता आता है।
और उधर भी देखें, क्योंकर हर्षार्णव लहराता है॥

× × × ×

अन्तरग था सेवक श्रीयुत सेठ सुदर्शन का प्यारा।
देखा जो यह दृश्य हृष्ट हो अपने मन मे यों धारा॥
"स्वामी से पहले जाकर मै करूं सूचना हर्ष मयी।
आनन्दित होगी सेठानी मातृ स्वरूपा स्नेह-मयी॥"
स्वामी अपने धर्म कर्म में दृढ, दयालु जो होता है।
बेतन भोगी नौकर को भी निजकुल जन ही जोता है॥
'मैं मालिक हूं, यह गुलाम है' दृष्टि न हर्गिज रखता है।
मानवता के दृष्टि कोण से अन्तर-भाव परखता है॥
सेवक भी स्नेहार्द्र वश मे एकमेक हो जाता है।
स्वामी के सुख मे सुख, दुख मे दुख की धार बहाता है॥
अस्तु, सेठ का दास शीघ्र ही श्रेष्ठी गृह दौड़ा आया।
जो कुछ बीता हाल साफ सब सेठानी का बतलाया॥
विश्वासी नौकर से जब यह सुना हाल, तो हर्ष अपार।
रोम रोम से बही प्रेम की गगा, जिसका वार न पार॥
ध्यान खोल कर एक एक कर ज्ञात करी बातें सारी।
द्वार देश पर जय घोषो की गूजी वाणी तब प्यारी॥
स्वर्ण थाल मे शीघ्रतया शुभ मगल द्रव्य सजाया है।
बाहर आकर प्राणनाथ का स्वागत-साज रचाया है॥
स्वर्णासन पर गजारूढ जब पति के दर्शन किए पुनीत।
चित्त चमत्कृत हुआ, मधुरतम गूंज उठा स्वागत सगीत॥

स्वागत-गान

पधारो, स्वागत, प्राणाधार!

अद्भुत धर्म-महत्व दिखाया,
शूली स्वर्णासन प्रगटाया,
दर्शनार्थ सुरपति चल आया,

छोड़ कर देवालय दरबार !
पधारो, स्वागत, प्राणाधार !

अटल, अचल, दृढ, अपने प्रण मे,
पैर न रक्खा पापाक्रण मे,
गूंजी अधिकाधिक क्षण क्षण मे,
पावन सत्य शील-हुँकार !
पधारो, स्वागत, प्राणाधार !

आध्यात्मिक बल कैसा भारी,
अन्तर मे दृढ समता धारी,
भौतिक बल ने हिम्मत हारी,
देखकर स्तब्ध हुआ ससार !
पधारो, स्वागत, प्राणाधार !

कैसा प्रेम पयोनिधि उमडा,
दूर हुआ सब रगडा झगडा,
सत्य पथ है मबने पकडा,
पाप का रहा नही कुविचार !
पधारो, स्वागत, प्राणाधार !

राष्ट्र भाल उन्नत सगर्व है,
मंत्रमुग्ध जन वृन्द सर्व है,
आज प्रेम का परम पर्व है,
हर्ष का कुछ भी वार न पार !
पधारो, स्वागत, प्राणाधार !

जयघोषों के बीच सेठ जी गज पर से नीचे उतरे।
मिले परस्पर दम्पति सोत्सुक हृदय हर्ष से अति उभरे॥

कैसा था आनन्द, स्नेह का दृश्य कलम क्या लिख सकती ?
स्नेह-सिन्धु की माप विश्व मे शक्ति न कोई कर सकती ॥
देख प्रेम पति पत्नी का सब लोग अमित अचरज पाए।
हो गृहस्थ, तो ऐसा हो, वर्ना क्यो जग मे ललचाए ॥
दो तन हैं पर एक प्राण है, कैसा प्रेम बरसता है।
स्वर्गलोक सा सौम्य सदन है, नित नव मधुर सरसता है ॥
स्वर्गलोक भी क्या कर सकता है, श्रेष्ठी के गृह की समता।
पुण्य-क्षय वाँ होता है, याँ संचय की नित तत्परता ॥
मुक्त-कठ से कीर्ति गान, नर नारी समुदित करते थे।
बीच बीच में जयकारो से गगन विगुंजित करते थे ॥
श्रेष्ठि भवन के प्रांगण मे जन सिन्धु उमड़ता था भारी।
राजाज्ञा से बैठ गए सब, लगी सभा अति ही प्यारी ॥
स्वर्णासन पर गए बिठाए दोनों दम्पति सुखकारी।
शोभा कुछ भी कही न जाए, शोभा थी जग से न्यारी ॥
राजा और प्रजा का आग्रह श्रेष्ठी ने स्वीकार किया।
सदाचार पर दृढ होने का ओजस्वी वक्तव्य दिया ॥
तदनन्तर दधिवाहन राजा और प्रजा ने गुण गाए।
अन्तर के सब कलिमल धोकर शुद्ध भाव सब ने पाए ॥
तदनु गृहागत जनता का सस्नेह उचित सत्कार हुआ।
बिदा हुए सब लोग, सेठ का घर घर जय जयकार हुआ ॥
पाठक ! धर्मवीर नर जग में यो परमानँन्द पाते हैं।
अपने आप विरोधी के छल छन्द नष्ट हो जाते हैं ॥
सेठ सुदर्शन अपने पथ पर अटल अचल सोल्लास रहे।
दु:खसिन्धु से पार हुए, चहुँ ओर सौख्य के स्रोत बहे ॥
स्वर्गोपम सुख पूर्ण सदन मे सुखी सपरिजन रहते हैं।
धर्म ध्यान में अधिकाधिक अब तत्पर सब दिन रहते हैं ॥

१३

अभया का अवसान

अंगराष्ट्र का उत्थान

दोहा

पापी अपने पाप से, हो जाते खुद नष्ट,
छल बल-पूरित शेमुषी, बनती बिल्कुल भ्रष्ट ।
अभया का सुनिए उधर, हुआ बुरा क्या हाल ,
मृत्यु-जाल में फँस गई, भूल गई सब चाल ।

धूर्त शिरोमणि रभा दासी पहुँची थी शूली-स्थल पर ।
अभया ने सब बात देखने भेजी थी दिल मे डर कर ॥
शूली से जब स्वर्णासन बदला तो कंपित गात हुआ ।
राजा पहुँचा तो सब कुछ ही होश हवास समाप्त हुआ ॥
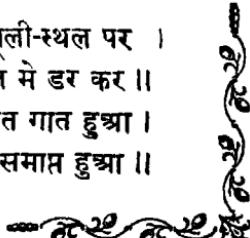
आँख बचा कर भगी शीघ्र गति से नृप मदिर मे आई ।
आँसू बरस रहे नयनो से अभया से यो बतलाई ॥
"सर्वनाश होगया स्वामिनी ! बैठी हो क्या हर्षान्वित ।
मृत्यु शीश पर घूम रही है, रह न सकोगी अब जीवित॥

'क्या कुछ हुआ ?' हुआ क्या अपना पापपूर्ण घट फूट गया ।
माया निर्मित तव अभेद्य गढ हाय पलक मे टूट गया ॥

शूली स्वर्णासन मे बदली बाल न बाँका जरा हुआ ।
देव सहायक हुए, धर्म का जग मे कचन खरा हुआ ॥
राजा जी भी नगे पैरो पहुँचे है भय भ्रान्त विकल ।
पडे हुए है सेठ-चरण मे उपलमूर्ति से अटल अचल ॥

'दुराचारिणी अभया है' यह कहते है सब नर नारी ।
भेद खुल गया है छल बल का, निन्दा फैली अति भारी ॥
राजा आने वाला है, अब काल सीस मँडराता है ।
जीवन-रक्षा का कोई भी पथ न ध्यान मे आता है ॥"

राणी ने यह कथन सुना तो कापा थर थर तन सारा ।
सन्नाटा सा बीत गया वह चली नेत्र से जल धारा ॥
आँखें पथरा गई और मस्तक ने चक्कर खाया है ।
मक्कारी बदकारी का सब दृश्य सामने आया है ॥
"हाय ! हाय !! भगवान ! पडा यह क्या इकदम उलटा पाँसा।
सेठ साफ बच गया, हुआ अब मम जीवन का ही साँसा ॥

क्या मुझ को ही अपने खोदे कूँवे मे पडना होगा ?
हाँ, अवश्य ही दुष्फल अपनी करणी का भरना होगा ॥

कपिला की सगत में पड कर जीवन भ्रष्ट बनाया, हा !
राणी बन कर भी अपयश का काला दाग लगाया, हा !!

क्या जाने अब किस कुमोत से राजा मुझको मरवाए ?
शूली दे अथवा नगी कर के कुत्तो से नुचवाए ?"
कहते कहते अभया राणी पडी फर्श पर गश खाकर।
फूटा शिर, बह चला रक्त, तन लगा तडफने इधर उधर॥

राणी की यह विकट दशा लख रभा अति ही घबराई।
माया जाल गूथने वाली तीक्ष्ण बुद्धि बस चकराई॥
और मार्ग कुछ नही समझ मे आया, लुक-छिप भाग गई।
सदा काल के लिए मोह चपा नगरी का त्याग गई॥

पापी-संग सहायक भी हर्गिज न अछूता रहता है।
लौह-संग मे अग्नि देव भी ताडन तर्जन सहता है।
होते है जो मार्ग भ्रष्ट, वे नित गिरते ही जाते हैं।
ठोकर पर ठोकर खाकर भी नहीं सँभलने पाते हैं॥

एक गर्त से निकल दूसरे अन्धगर्त मे गिरी हहा!
जीवन भ्रष्ट बनाने का पथ गहा अन्य भी मलिन महा॥

धक्के खाती रभा पहुँची नगर पाटली-पुत्रक में।
पास रही हरिणी वेश्या के लगी उसी फिर लपझप मे॥

अभया का फिर हाल हुआ क्या, चलिए नरपति-मन्दिर मे।
पाप-दूत ने दिया न रहने अभया को तन-मन्दिर मे॥
मूर्च्छा भंग हुई राणी की रभा नजर न आई है।
विना सहायक के दुगुनी तब शोक-घटा घहराई है॥

"हा रभा! तू भी यो मुझ को छोड कष्ट मे चली गई।
आखिर धोखा दिया भयकर, तेरी भी मति भ्रष्ट हुई॥
तेरे ही बल पर मैंने यह झूठा झगडा खड़ा किया।
आनँद मे थी, व्यर्थ स्वय को कष्ट जाल मे फँसा लिया॥

तू रहती तो बच भी जाती, अब कैसे बच पाऊँगी ?
इस संकट मे जीवन रक्षक मंत्र कहाँ से लाऊँगी ?
अपमानित होकर मरना तो जग मे महा भयंकर है।
'राजा जी मारें' इससे तो स्वयं मरण श्रेयस्कर है ॥"
अभया ने मरने को दिल मे साहस की बिजली भरली।
छत्त मे रस्सी बाँध, लगा गल फाँसी, निज हत्या करली ॥
पश्चात्ताप किया था, फलत: देवयोनि मे जन्म लिया।
किन्तु कलंकारोपण ने अति निंद्य व्यन्तरी रूप दिया ॥
ठाठ बाठ थे अभया के मन मोहन सुर बाला जैसे।
आज देखिए फाँसी पर मृत देह झूलती है कैसे ?
पापवाटिका कुछ ही दिन तक खूब फूलती फलती है।
कर्मोदय पाला पड़ने पर क्षण भर मे ही जलती है ॥

दोहा

श्रेष्ठी जी के धाम से, लौटे श्री भूपाल,
सोच रहे थे चित्त में, अभया का यों हाल।

"अभया का अपराध सर्वथा ही अक्षम्य भयंकर है।
श्रेष्ठी को लांछित करने का किया पाप प्रलयकर है ॥
पातिव्रत की मूर्ति बनी थी, मुझको भ्रम में फँसा लिया।
पड़ा रहा व्यामोह जाल मे, नही जरा भी ध्यान दिया ॥
कैसे कैसे घोर पाप कृत मेरे से हा करवाए।
सच्चरित्र श्रेष्ठी जैसे भी सज्जन शूली चढ़वाए ॥
प्राणदंड से न्यून दंड, मैं कभी न अभया को देता।
दयामूर्ति यदि सेठ क्षमा का वचन न मेरे से लेता ॥
संसारी जीवन चंचल है, बनते और बिगड़ते हैं।
धर्मी, पापी बनते हैं, फिर पापी, धर्मी बनते हैं ॥

श्रेष्ठी का आदर्श देख कर अभया अब तो सँभलेगी।
लज्जित होकर स्वय स्वय पर, स्वय कुपथ सब तज देगी॥
श्रेष्ठी जी को वचन दिया है, अत न मर्म दुखाऊँगा।
द्वेष भाव अणु भी न रखूँगा, सादर स्नेह निभाऊँगा॥"
करते करते यो विचार, निज राजमहल मे नृप आए।
देखा दुखद दृश्य, दया के भाव हृदय मे भर आए॥
"काल चक्र! तेरी भी जग मे क्या ही अद्भुत महिमा है।
पार न पा सकता है कोई कैसी गहन वक्रिमा है॥
विश्वमोहिनी सुर बाला सा कैसा सुन्दर कोमल तन!
आज झूलता है फाँसी पर करता तन मन मे कपन!!
श्रेष्ठी ने तो क्षमा दिला, थी दड-यत्रणा सभी ढँकी।
पाप भार से दबी स्वय, पर, नहीं जरा भी उभर सकी॥
'यादृक् करण तादृग्भरण' उक्ति न अणु भी मिथ्या है।
जीवन पथ मे पाप पुण्य-गति रत्ती रत्ती तथ्या है॥
मोह-विकल ससार, जाल मकडी के तुल्य बनाता है।
अन्य फँसाने जाता है, पर, आप स्वय फँस जाता है॥"
बुला दासियो को रानी का शव नीचे उतराया है।
कौन कौन दासी गायब है? यह भी पता लगाया है॥
रभा का जब पता न पाया, भेद समझ मे आया है।
'राणी ने उसके द्वारा ही यह षड्यत्र कराया है॥
अभया राणी और सेविका रभा की यह बुरी खबर।
फैल गई द्रुत विद्युत-गति से चपा नगरी मे घर-घर॥
सभी प्रजाजन ने सत्पथ की एक-स्वर से बोली जय।
और दभ की, दुराचार की, दुष्कृत पथ की बोली क्षय॥

भोग वासनाओ पर सहसा घृणा भाव सब मे छाए।
सदाचार जीवन के अविकल भाव हृदय मे सरसाए।।
किं बहुना, अभया की राजा जी ने मृत-अन्त्येष्टि करी।
फैल रही थी जो भी गड़बड उसकी शीघ्र समाप्ति करी।।

दोहा

अग राष्ट्र के पतन का कटक हुआ समाप्त,
होता है अब देखिए, कैसे गौरव प्राप्त।

न्यायालय मे एक समय नरपति ने सेठ बुलाया है।
जनता हितकर वह पहले का कार्य, ध्यान मे आया है।।
भूप तथा श्रेष्ठी ने मिल कर किया खूब गभीर विचार।
बनी योजनाएँ जिनसे हो अगराष्ट्र का पुनरुद्धार।।
एकमात्र श्रेष्ठी को सौपा उक्त कार्य का सारा भार।
श्रेष्ठी ने भी दिखा दिया कर कुछ ही दिन मे बेडा पार।।
नगर नगर मे ग्राम ग्राम मे खुले हजारो विद्यालय।
क्या युवती, क्या युवक सभी पाते है शिक्षा नित अक्षय।।
प्रात साय ज्ञान-मन्दिरो मे ज्ञानार्जन होता है।
नाना विध ग्रन्थो का वाचन कुमति कालिमा धोता है।।
औषध-गृह मे मुफ्त औषधी मिलती है सर्वत्र सदा।
व्याधि-ग्रस्त क्या कोई रहता नही विवश सत्रस्त कदा।।
शासन और न्याय सब प्राय पचायत ही करती थी।
कष्टों के क्रीडा स्थल मे सुख तटी तरगे भरती थी।।
टैक्स-भार जो वृथा प्रजा पर था, वह बिल्कुल दूर किया।
चमक उठा व्यापार अग का लक्ष्मी ने आ वास किया।।
कोई भी बेकार युवक नर, नही कभी भी रहता था।
यथा योग्य वर कार्य नित्य ही पाकर सुख से बसता था।।

होता था न प्रकट या गुपचुप कहीं कभी भी मदिरा-पान।
नाममात्र से भी मदिरा के समझा जाता था अपमान॥
जूवा, चोरी, और परस्त्रीगमन सर्वथा नहीं रहे।
अंग देश मे स्वच्छ समुज्वल सदाचार के स्रोत बहे॥
स्वप्नलोक मे भी दु खो की कभी न छाया पड़ती थी।
रात्रि दिवस जनता मे केवल सुख की बन्शी बजती थी॥
न्याय निपुण अधिकारी गण मे रिश्वत का था नाम नहीं।
क्रीतदास थे जनता के, था अकड धकड़ का नाम नहीं॥
धन्य सुदर्शन! तूने अपना ध्येय पूर्ण कर दिखलाया।
अँग राष्ट्र का बन उद्धारक, अमर सुयश जग मे पाया॥
क्या गाँवो, क्या नगरो मे सब ठौर सेठ की पूजा है।
सफल किया नर जन्म, आपसा जगमे और न दूजा है॥

४१

पूर्णता के पथ पर

दोहा

नर जीवन की पूर्णता, नही मात्र गृह क्षेत्र,
मुनिपद धारण श्रेय है, उघड़े अन्तर नेत्र।
जीवन के अपराह्न मे, लेकर पूर्ण विराग,
उभय पक्ष साधन किए, धन्य सेठ महाभाग।

धर्म घोष मुनिराज एकदा चम्पापुर मे आए हैं।
बाहर उपवन मे ठहरे, जन दर्शन कर हर्षाए हैं॥
सेठ सुदर्शन जी भी पहुँचे वन्दन कर पूछी साता।
धार्मिक जन का गुरु दर्शन से हृदय हर्ष से भर आता॥
धर्म घोष गुरु ने परिषद् मे दिया स्वप्रवचन निर्वृति-मय।
प्रवचन क्या था अमृत बरसा सबका गद्गद हुआ हृदय॥

धर्मोपदेश

[तर्ज—कनीयर वाला मेरा साई, निभाई जिन लालई यारियां]

धर्म की पूँजी कमाले, कमाले जीवा, जीवन बन जायगा (ध्रुव)
जीवन पट है बेरँग कब से ?
संयम रंग चढाले, चढाले जीवा !
बागे जहाँ मे अपना जीवन,
पुष्प सुगन्ध बनाले, बनाले जीवा !
अखिल विश्व के दलित वर्ग की,
सेवा का भार उठाले, उठाले जीवा !
सोया पडा है अन्तर चेतन,
सत्संग बैठ जगाले, जगाले जीवा !
मोह पाश के दृढ बन्धन से,
अपना पिंड छुड़ाले, छुड़ाले जीवा !
हो तू भला इतना कि रिपू भी,
चरणों मे शीश झुकाले, झुकाले जीवा !
राग द्वेष का जाल बिछा है,
दूर से राह बचाले, बचाले जीवा !
'अमर' सुयश के वाद्य बजेंगे,
सत्य की धूनी रमाले, रमाले जीवा !

सेठ सुदर्शन जी ने पूछा पूर्व जन्म का अपना हाल ।
गुरुवर बोले अवधि ज्ञान से भेद पूर्व तमसावृत काल ॥
"पूर्व जन्म मे सेठ आप थे ग्वाल सुभग आज्ञाकारी ।
चंपा मे निज जनक श्राद्ध जिनदास सेठ के प्रिय भारी ॥

सेठ निजालय पर गायों का करते थे बहु प्रतिपालन।
धनाभाव से त्रस्त दीन जन भी पाते थे पय पावन॥
गायों को तू सुभग सर्वदा वन मे लेकर जाता था।
प्रेम भाव से चरा फिरा कर निज कर्तव्य निभाता था॥
एक समय की बात, विपिन मे ध्यानावस्थित मुनि देखे।
वृक्षमूल मे शान्तमूर्ति दृढ पद्मासन से थे बैठे॥
मन्त्रमुग्ध सा हुआ सुभग श्रीमुनिवर के कर प्रिय दर्शन।
शान्त, सौम्य,हो गया आपही तन्मय होकर चचल मन॥
उच्चस्वर से मंत्रराज का पढकर प्यारा प्रथम चरण।
गगनाङ्गण मे उडे तपस्वी लगा बिलम्ब न कुछ भी क्षण॥
ग्वाल सुभग भी चकित हुआ सुन लगा उसी दिन से रटने।
श्वास श्वास के साथ मधुर झनकार लगी क्रमशः बढने॥
चमत्कार प्रत्यक्ष आँख से देख किसे विश्वास न हो?
अन्धकारमय हृदय गुहा मे क्यो फिर ज्ञान प्रकाश न हो?
पता लगा जब श्रेष्ठी को तो हृदय हर्ष से भर आया।
जैन धर्म के श्रावक पद का क्रिया काण्ड सब समझाया॥
देकर सुविधा सभी तरह की धर्म मार्ग मे लगा दिया।
भेद भाव रक्खा न रच भी श्रेष्ठ स्वधर्मी बना दिया॥
एक दिवस सानन्द सुभग वन मे जब गाय चराता था।
बहती सरिता पास एक उसका शुभ दृश्य सुहाता था॥
स्नान कार्य के हेतु वृक्ष पर चढ कूदा सरिता जल मे
जलाच्छन्न था तीक्ष्ण ठूंठ वह लगा सुभग-उदरस्थल मे॥
शुभ भावो से मरा और जिनदास सेठ के जन्म लिया।
पूर्व जन्म के स्वामी को ही जनक-रूप मे प्राप्त किया॥

श्रेष्ठिवर्य तुम वही सुभग हो, क्या से क्या ऐश्वर्य मिला।
ग्वाल बाल से बने श्रेष्ठिवर पूर्णतया सुख पुष्प खिला॥
पूर्वजन्म की सस्कृति का इस भव मे यह विस्तार हुआ।
सदाचार की ज्योति जगादी,विस्मित सब ससार हुआ॥
धर्माराधन कभी न निष्फल तीन काल मे होता है।
एक मात्र इस ही के बल पर विश्व—वन्द्य नर होता है॥"

धर्म घोष गुरु की वाणी से पूर्व जन्म का चित्र समस्त।
प्रतिबिम्बित हो उठा सेठ के मानस दर्पण मे अभ्यस्त॥
परिषद् मे हो खडे सेठ ने कहा—"धन्यगुरु ज्ञानी है।
जो कुछ तुमने कही स्मृति मे झलकी सभी निशानी हैं॥

पूर्व जन्म मे जो कुछ बोया, उसका फल यॉं पाया है।
जीवन पथ मे सभी ठौर 'करणी' का गौरव गाया है॥
अस्तु आपकी सेवा मे अब अग्रिम जन्म सुधारू गा।
त्याग शीघ्र गृहवास, श्रेष्ठतम मुनिपद का व्रत धारू गा॥"

धर्म घोष गुरु बोले "सहसा नही शीघ्रता करिएगा।
समझ बूझकर भली भॉंति इस पथ पै निज पद धरिएगा॥
साधुवृत्ति का ले लेना कुछ बच्चो का है खेल नही।
भोग विलासी जीवन का यॉं खाता बिल्कुल मेल नही॥

त्याग क्षेत्र के पूर्ण परीक्षित योद्धा तुम हो, नही कसर।
किन्तु हमारा सयम पथ भी बडा विकट है, श्रेष्ठि प्रवर॥
भिक्षु मार्ग पर चलना तो बस नग्न खड्ग पर धावन है।
जीवन्मृत ही चलता इस पर जो बहिरन्तः पावन है॥"

भक्ति-नम्र हो कहा सेठ ने "प्रभो! आपका सत्य वचन।
सयम-भार हिमाचल सा है, उठा न सकता दुर्बल मन॥

आदि काल से किन्तु मनुज ही इसे उठाता आया है।
साहस हो तो कुछ भी दुष्कर कार्य न जग मे पाया है॥
मैं भी तो हूँ मनुज साहसी क्यो न भिक्षुपथ ग्रहण करू ?
अन्तस्तल से सदाकाल को क्यों न पापमल हरण करूं ?
प्रभो ! आपकी सेवा मे रह कर सब कुछ बन जाएगा।
अधम सुदर्शन भी मुनिपद के उच्च शिखर चढ जाएगा॥"

वन्दन कर सोल्लास सेठ जी अपने घर पर आए हैं।
स्नेहवती सेठानी को निज भाव साफ बतलाए है॥
बात अचानक सुन पहले तो तन मन की सुध भूल गई।
शोक सिन्धु मे बही, बिरह के दुख से छाती फूल गई॥
बार बार जब श्रेष्ठी जी ने प्रेम भाव से समझाई।
हर्षान्वित हो तब मुनिपदवी लेने की आज्ञा पाई॥
राजा और प्रजाजन ने भी समझाने का यत्न किया।
किन्तु अन्त मे श्रेष्ठी का सुविचार सभी ने मान लिया॥

पुत्रो को निज पद देकर, सब गेह कार्य सँभलाया है।
न्याय नीति क साथ प्रजा के हित का पथ समझाया है॥
नगर निष्क्रमण समारोह के साथ हुआ, वन मे आए।
धर्म घोष गुरुवर से मुनिवर पद के सुन्दर व्रत पाए॥
छोड़ दिया सम्बन्ध आज से वक्रमूर्ति जग-माया का।
काम सँभाला विश्वहितकर, तजा मोह भी काया का॥

राजा और प्रजाजन महती सख्या मे समुपस्थित थे।
श्रेष्ठी-मुख से सदुपदेश सुनने को अति-उत्कंठित थे॥
ओजस्वी मीठी वाणी से नव मुनि ने उपदेश किया।
सभी जनो के हृदय-क्षेत्र में बोधामृत-नद बहा दिया॥

मुनि सुदर्शन का उपदेश

[तर्ज—अगर जिनदेव के चरणों में तेरा ध्यान हो जाता]

प्रति क्षण क्षीण जीवन में अमर खुद को बना देना,
भविष्यत की प्रजा को अपने पद चिन्हो चला देना।
दुखी दलितों की सेवा में विनय के साथ जुट जाना;
अखिल वैभव बिना झिझके बिना ठिठके लुटा देना।
असत्पथ भूल करके भी कभी स्वीकार ना करना,
प्रलोभन में न फँस कर सत्य पथ पर सिर कटा देना।
परस्पर प्रेम से रहना जगत में प्रेम जीवन है,
बचाना प्रेम को, चाहे अमित सर्वस गँवा देना।
क्रमागत कुप्रथाओं का भ्रमों का मूढताओं का;
अध पाती निशा मानव जगत में से मिटा देना।
जगत में सत्य ही केवल अमर अविचल अटल बल है,
अतः निज शीश भगवन सत्य के आगे झुका देना।
सहस्राधिक प्रयत्नों से 'अमर' कर्तव्यच्युत जग मे,
नया जीवन, नया उत्साह, नया युग ला दिखा देना।

श्रीगुरुवर के साथ सुदर्शन मुनिवर ने अब किया बिहार।
ज्ञानाभ्यासी बने श्रेष्ठ, फिर किया सत्यका विमल प्रचार॥
देश-देश मे, नगर-नगर में, गाँव-गाँव मे घूम फिरे।
पाकर के सद्‌बोध आप से भव्य अनेकानेक तिरे॥
योग साधना हेतु एकदा श्री गुरुवर से किया बिचार।
दृढ साहसका अव लंबन कर एकल पडिमा की स्वीकार॥

शून्य वनों में, शैल गुहाओं में अब निर्भय रहते थे।
आत्म ध्यान में मस्त, प्रकृति के नाना संकट सहते थे॥

मास-आदि अनशन व्रत का जब कभी पारणा आता था।
पावन दर्शन श्री मुनिवर का नगर लोक तब पाता था॥

नगर पाटलीपुत्र मनोहर, एक बार आए मुनिवर।
घूम रहे थे मथर गति से भिक्षाशन लेते घर घर॥
रंभा ने देखा तो अति ही चकित खड़ी की खड़ी रही।
पूर्व दुःख की ज्वाला भड़की, रहा द्वेष का पार नहीं॥

पूर्व वैर प्रतिशोधनार्थ हरिणी से बात बनाई है।
सत्पथ भ्रष्ट बनाने की अब फिर से राड उठाई है॥
बातों ही बातो मे कुछ ऐसा जिक्र चलाया है।
नारी-वर्णन पर से वर्णन त्रियाचरित का आया है॥
"अखिल विश्व मे त्रियाचरित का बल ही दुर्जय होता है।
शीघ्र यथेच्छित त्रिभुवन भर का पुरुषवर्ग वश होता है॥

पर ऐसे भी धार्मिक जन हे, जो न कभी वश मे आते।
त्रिया चरित के छल-बल सारे शीश पीट कर रह जाते॥"

कहा तिनक कर हरिणी ने "यह कभी नहीं हो सकता है।
कैसा भी हो पुरुष, किन्तु वह हम पर सब खो सकता है॥"
रंभा ने इस पर श्रेष्ठी का सारा वृत्त सुनाया है।
डर न जाय, अतएव शूलि-आदिक का हाल छुपाया है॥

और कहा "देखो वह श्रेष्ठी आज साधु बन है फिरता।
भिक्षा माँग रहा घर-घर से, उत्कट है तप की स्थिरता॥"

बोली वेश्या हँस कर "रंभा! तूने भी यह खूब कही।
राज महल मे इन बातो की आ सकती है गन्ध नहीं॥

मैं गणिका हूँ, परपरा से यह ही पेशा मेरा है।
जगत्प्रतिष्ठित सुजनो को भी फँसा जाल मे गेरा है।।
कैसे झटपट रूप दीप पर यह पतंग भी गिरता है ?
काम असीम महा सागर है, देखू कैसे तिरता है ?"

वेश्या ने जाकर मुनिवर को भक्ति भाव से प्रणति करी।
'मुझ घर भी भिक्षार्थ पधारे' साग्रह यो विज्ञप्ति करी।।

सरल चित्त मुनिराज पता क्या उन्हें, तुरत पधार गए।
वेश्या ने समझा, अब क्या है, सभी मनोरथ पूर्ण हुए।।

तीन दिवस तक मुनिवरजी को घर मे ही रोके रक्खा।
काम वासनाओ का कुत्सिततम नाटक रोपे रक्खा।।

जो करना था किया, किन्तु आखिर मे हरिणी स्वय थकी।
अटल मेरु सा हृदय व्रती का तिलतुष मात्र डिगा न सकी।।

पूर्णरूप से हुई प्रभावित, हाथ जोड़ कर नमन किया।
"क्षमा करें अपराध, आपको मैंने जो यह कष्ट दिया।।"

शान्त मूर्ति ने क्षमादान कर, दिया एक धार्मिक प्रवचन।
जाग उठा सोते से रभा, वेश्या का द्रुत अन्तर मन।।

श्रावक के व्रत धारण कीने, पूर्ण शील का नियम लिया।
दोनो ने ही दुराचार का पथ सदा को त्याग दिया।।

अध्यात्मिक बल अनुपम बल है, कही न इसकी समता है।
पापात्मा को धर्मात्मा करने की अविचल क्षमता है।।

दो जीवों का महा भयकर पतन गर्त से कर उद्धार।
क्षमा और करुणा के सागर गुरु ने वन को किया विहार।

१५

पूर्णता

दोहा

पूर्ण त्याग की साधना, करती कलिमल चूर्ण,
हो जाता पामर मनुज परमात्मा प्रतिपूर्ण।

मानव भव के तुल्य विश्व मे और न वस्तु अनूठी है।
जो कुछ महिमा है, इसकी है, और बात सब झूठी है॥
स्वर्ग लोक के श्रेष्ठ देव भी एतदर्थ नित झुरते है।
पावें कब नर जन्म मुक्तिप्रद यही कामना करते है॥
जीवात्मा बन बहुरूपिया लख चौरासी रुलता है।
मुक्ति द्वार जब खुलता है तो मात्र यही पर खुलता है॥
मानव भव का लक्ष्य नही है, अत बीच मे रुक रहना।
पाना है अमरत्व भले ही कष्ट पड़े कुछ भी सहना॥

वन्दनीय हैं पुरुषरत्न वे, करते हैं जो इन्द्रिय जय।
नष्ट समूल वासना विष कर पाते हैं शिव पद निर्भय॥
पूर्ण त्याग का मार्ग सुदर्शन मुनि ने भी अपनाया है।
पाया है लोकोत्तम जिन पद सफल नृजन्म बनाया हैं॥

× × × ×

वेश्या को प्रति बोध दान कर वन मे आसन लाया है।
आत्म चिन्तना करते करते यह विचार मन आया है॥
"अरे सुदर्शन! अब भी तुझ मे बहुत बडी दुर्बलता है।
जहाँ कही भी तू जाता है, यह प्रपच क्यो चलता है?
राग द्वेष की निद्य भावना तुझे देख क्यो उठती हैं?
व्यर्थ विचारी महिलाएँ क्यो काम शल्य से कुढती हैं?
बाहर जो होता है उसका बीज हृदय मे ही होता।
प्राय निज मन ही प्रतिबिम्बित औरो के मन मे होता॥
अस्तु हृदय मे पाप कालिमा का सब चिन्ह मिटाऊँगा।
पूर्णतया परिशोधन कर स्फटिकोज्वल स्वच्छ बनाऊँगा॥"
आध्यात्मिक सकल्पो का जब हुआ हृदय मे दृढ विस्तार।
जग-प्रपच मूलापहारिणी अटल प्रतिज्ञा की स्वीकार॥
"अब से केवल ज्ञानोदय तक नही नगर मे जाऊँगा।
भोजनादि सब अटवी मे ही पथिकादिक से पाऊँगा॥"
शून्य भयावह वन मे निर्भय सिह समान विचरते है।
उग्र तपश्चरण के द्वारा कर्मांकुर क्षय करते हैं॥
एक समय की बात, एक कानन मे पहुँचे मुनिवर।
ध्यान लगाया सघन कुंज मे चंचल चित्त अचंचल कर॥
अभया रानी बनीव्यतरी, इसी विपिन में फिरती थी।
क्रूर भाव के कारण यॉ भी पाप पिंड ही भरती थी॥

अकस्मात एक दिन फिरती मुनि समीप में आ निकली।
दर्श-मात्र से बैर जगा, कर पूर्वस्मरण अति ही मचली॥
"अरे वही है यह तो पापी सेठ सुदर्शन अभिमानी।
मैंने सब कुछ कहा करा, पर एक नहीं इसने मानी॥
रानी थी मैं तो, मेरे को इसी धूर्त ने नष्ट किया।
भय विह्वल कर आत्म-हनन का अति ही भीषण कष्ट दिया॥
आदि काल का धर्म धूर्त, फिर आज साधु बन बैठा है।
धर्म-मूढ लोगो को ठगने मायार्णव मे पैठा है॥
पूर्व जन्म की आज वासना पूर्ण करूंगी जी भर कर।
देवी हूँ, अति दिव्य शक्ति है, क्यो न बनेगा मम किकर॥"
वन में मादक सरस सुगन्धित ऋतु वसत लहराया है।
त्याग और वैराग्य उडाने का सब साज सजाया है॥
माया बल से अनुपमेय अति सुन्दर रूप बनाया है।
गगनागण से उतर विमोहक हाव भाव दर्शाया है॥
"तपोमूर्ति ऋषिराज! तुम्हारा धन्य धन्य तप धन्य अमल।
पूर्ण पुण्य के योग इसी भव मे ही द्रुत हुआ सफल॥
स्वर्ग लोक से स्वय इन्द्र ने मुझको यहाँ पठाई है।
तप द्वारा जो सुख चाहा था, दासी देने आई है॥
आँख खोल कर जरा देखिए देवी कैसी होती हैं?
पूर्ण तपोधन सत जनो को सुखप्रद कैसी होती हैं?"
ध्यान मग्न मुनि के मानस मे आया अणु भी क्षोभ नही।
प्रलयानिल से मेरु मही धर हिल सकता है भला कही॥
कालरात्रि सम क्रुद्ध पिशाची का अभया ने रूप धरा।
काँप उठे वन, गिरि, पृथ्वीतल प्रलयकाल सा दृश्य करा॥

नग्न खड्ग युग कर मे लेकर बडे जोर से धमकाया।
भीषण माया जाल बिछाकर पूर्ण मृत्यु-भय दिखलाया॥
दैवी छल बल गर्वमत्त इस ओर भयकर बाधक है।
शान्तमूर्ति उस ओर अकेला निश्चल निष्कल साधक है॥

वज्र भित्ति पर लौह घात का होता है क्या कभी असर?
संसारी छल बल से क्यो कर डिग सकता है मुनि-प्रवर?
ज्यो ज्यो अभया अधिकाधिक अत्युग्र ताडना करती है।
त्यो त्यो मुनिमानस मे शुक्ल-ज्योति अतीव उभरती है॥

पूर्ण दशा पर शुक्ल ध्यान बल पहुँचा तो भगवान हुए।
केवल ज्ञान अखंडित प्रगटा, नष्ट अखिल अज्ञान हुए॥
केवल महिमा करने को सुर वृन्द स्वर्ग से आया है।
दुदुभि-वाद्य बजे नभ-तल मे गन्धोदक बरसाया है॥

देव-सभा मे श्रीजिन बोले वाणी मीठी सुधा भरी।
आत्म शुद्धि का मार्ग बताया धर्मामृत की वृष्टि करी॥

"अखिल विश्व में एक मात्र निज कर्मो की ही प्रभुता है।
कर्म पाश म फँसा विवश जग पाता गुरुता लघुता है॥

प्रति-आत्मा मे बीज छुपे है निष्कलंक भगवत्ता के।
कर्म-उपाधि नष्ट हो, तब हों दर्शन निजी महत्ता के॥

आप और मैं सभी एक है, मात्र उपाधि मिटा दीजे।
भोग मार्ग तज क्रमश निज को श्रीभगवान बनालीजे॥

गुण पूजा का यह उत्सव है, अत सुगुण अपना लीजे।
'परगुणमहिमा निज गुण प्रगटाने मे ह' न भुला दीजे॥"
वाणी सुन कर हृदय व्यतरी का भी सहसा पलट गया।
दुर्भावों का क्षेत्र बना अब सद्भावों का क्षेत्र नया॥

हाथ जोड़कर श्रीजिन प्रभु से क्षमा प्रार्थना की सादर।
पश्चात्ताप किया कलिमल का आत्म-भावना विमलंकर ॥
क्षमा सिन्धु श्रीजिन ने भी सस्नेह क्षमा का दान किया।
बोधिज्ञान दे अभयात्मा को दृढ सम्यक्त्वी बना दिया ॥
देवों को जब पता चला तो चहुँ दिश जय जयकार हुआ।
धन्य धन्य है वीतरागता, अभया का उद्धार हुआ ॥
'अन्धकार-संत्रस्त प्रजा को दूँ प्रकाश दिल में आया।'
घूम घूम कर सब देशो मे सदाचार पथ बतलाया ॥
धर्मान्दोलन करते करते मोक्षकाल अब आया है।
योग-निरोधन कर अजरामर 'सिद्ध''मुक्त' पद पाया है।

उपसंहार

पाठक वृन्द सुदर्शन जीवन पूर्ण आपके सम्मुख है।
आदि, मध्य, पर्यन्त जो कि सर्वत्र कुवृत्त पराङ्मुख है ॥
मानव जीवन किस प्रकार से सफल बनाया जाता है?
सेठ सुदर्शन का जीवन बस वही प्रकार बताता है ॥
विश्व पूज्य नर तनु की केवल यही एक है दुर्बलता।
कामवासना का दावानल मन मे अति भीषण जलता ॥
श्रेष्ठी सम जो काम-जयी बन, मन पर अंकुश रखता है।
वह नर, नारायण बनता है, तीन लोक मे पुजता है ॥
उक्त कथा के अन्य दृश्य भी शिक्षाप्रद हैं अति भारी।
धैर्य, दया, उपकार आदि गुण जीवन मे हैं सुखकारी ॥
धर्म कथा का पठन श्रवण कब अन्तर-कलिमल धोता है?
जब चरित्र नायक का जीवन निज जीवन मे होता है ॥
पाठक वृन्द! आप से केवल यह मम नम्र निवेदन है।
सदाचार के पथ पर चलिए सुधरे जिससे तन मन है ॥

प्रशस्ति

स्थानकवासी जैन संघ मे पूज्य मनोहर बड भागी।
धीर, वीर, गम्भीर संयमी, हुए प्रतिष्ठित जग-त्यागी ॥
कष्ट सहन कर किए अनेको ग्राम नगर पुर प्रतिबोधित।
गच्छ आपसे चला मनोहर सयम पथ मे अतिशोभित ॥
शास्त्राभ्यासी उग्र तपस्वी पूज्यश्री मुनि मोतीराम।
उक्त गच्छ के थे अधिपतिवर पाया यश अनुपम अभिराम ॥
अन्तेवासी श्रेष्ठ आपके पृथ्विचन्द्र जी गुरुवर हैं।
जैनाचार्य पदालकृत है, गच्छ-मनोहर दिनकर है ॥
श्रद्धास्पद गणिवर्य श्याममुनि भद्रस्वभावी गुण-धारी।
पूज्य श्री के साथ हुआ है चौमासा मगल-कारी ॥
भारत भूषण शतावधानी रत्न चन्द्र जी गुजराती।
साथ विराजे है सद्‌गुण की महिमा है अति मन भाती।
पूज्य-पाद पद्मालि अमर मुनि ने यह ग्रथ बनाया है ॥
सेठ सुदर्शन जी का जीवन चरित काव्य मे गाया है।
विक्रमाब्दशर निधिनिधि विधु मे शुक्ल अष्टमी मगसिरमास।
पूर्ण किया है नगर आगरा लाहा मडी मे सोल्लास ॥

ॐ शान्ति ! ॐ शान्ति !! ॐ शान्ति !!!
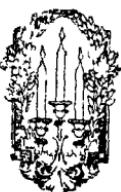
हमारे सुन्दर सस्ते प्रकाशन

१. **श्री अन्तकृद्दशांग सूत्र** । यह सूत्र जैन संप्रदाय मे बहुत माना हुआ है । पर्युषण पर्व मे इसी का वाचन होता है । महापुरुषों के जीवन कथानक इसमें बड़ी सुन्दरता के साथ दिये हुए हैं । बहुत सरल हिन्दी टीका के साथ पत्राकार संस्करण । मोटा दलदार काग़ज़ । मूल्य ।।।)

२ **निर्ग्रन्थ प्रवचन** । मूल, संस्कृत और अंग्रेजी अनुवाद । भगवान महावीर की शिक्षाओ का इसमे अमूल्य संग्रह है । अंग्रेजी विद्वानो के लिए यह बहुत ही सुन्दर चीज़ तैयार की गई है । मूल्य ।।)

३ **श्रद्धांजलि** । श्री रत्नचन्द्र जी मुनि यू० पी० प्रान्त के एक बहुत ही प्रभावशाली सन्त हुए है । इसमें आपका ही जीवन परिचय, जैन ससार के उदीयमान कविरत्न मुनि श्री अमरचन्द्र जी ने बड़ी सरस कविता मे लिखा है। आगरा के सुप्रसिद्ध, साहित्यज्ञ, कवि और सपादक प० हरिशंकरजी पुस्तक के सम्बन्ध मे लिखते हैं—'इसकी कविता सरल, सुबोध तथा रोचक है । पढने वालों को आनन्द भी प्राप्त होगा और शिक्षा भी मिलेगी ।'

इसके अतिरिक्त 'नव-सन्देश' सम्पादक श्री विजयसिह जी पथिक का 'जैन मुनिराजो का जीवन' भी भूमिका के रूप में एक गवेषणा पूर्ण अत्यन्त महत्वपूर्ण निबन्ध है । मूल्य ।)

४ **धर्मवीर सुदर्शन** । यह पत्राकार भी छपा है, जो व्याख्यानदाताओ के लिए बड़ा उपयोगी है । इसकी विशेषताएँ आपके समक्ष हैं । मूल्य ।-)

५ **गुरु गुण महिमा** । यह पुस्तक भी पद्यमय संग्रह है । पूर्वज मुनियो का गुणगान किया है । मूल्य)।।।

प्राप्ति स्थान —

श्री वीर पुस्तकालय

लोहामंडी, आगरा